Rajendra Bahadur Mathur
A student of class XI
Police [illegible]
1946.

Rajendra Bahadur Mathur

हिन्दुस्थानी शिष्टाचार

—: * :—

लेखक
कामताप्रसाद गुरु

———

प्रकाशक
रामनारायण लाल
पब्लिशर और

...अंगरेज़ी शिष्टाचार के ... के
...मा पिछले दोनों शिष्टाचारों की अस्वाभाविक
नवीन संस्करण से ये नियम-मुक्त हैं—अर्थात् इनमें अपने को

भूमिका

इस विषय की एक दो पुरानी तथा अप्रचलित पुस्तकों को छोड़ अन्यान्य उपयुक्त पुस्तकों का अभाव देखकर हमने इस पुस्तक को लिखने का साहस किया है। समाज की सभ्यता की बढ़ती के साथ-साथ उसमें शिष्टाचार की सूक्ष्मता की भी वृद्धि होती है; इसलिए यह आवश्यक है कि उसके शिष्टाचार के नियम व्यवस्था-पूर्वक संगृहीत किये जाएँ। यह पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गई है और आशा है कि जब तक इससे अधिक उपयुक्त संग्रह का अभाव है तब तक पाठक-गण इसे उदारता की दृष्टि से देखेंगे।

इस पुस्तक में इसके नाम के अनुसार हिन्दुस्थानी समाज के शिष्टाचार का विवेचन किया गया है। "हिन्दुस्थानी" शब्द से बहुधा हिन्दी-भाषा-भाषी तथा उस समाज की व्याप्ति का अभिप्राय है जिसका नाम भौगोलिक "हिन्दुस्थान" शब्द से व्युत्पन्न हुआ है। यद्यपि हिन्दुस्थानी शिष्टाचार के नियम "हिन्दुस्थान" के प्रायः सभी भागों में एक ही हैं; तथापि स्थान-भेद से थोड़ा-बहुत अन्तर पड़ने की संभावना है। ऐसी अवस्था में पाठक लोग यह समझ लेने की कृपा करें कि अमुक एक रीति किसी न किसी हिन्दी-भाषी स्थान में अवश्य प्रचलित है। ये नियम संभवतः दूसरे प्रदेशों में भी प्रचलित हों।

शिष्टाचार के जो नियम इस पुस्तक में लिखे गये हैं उनमें से थोड़े-बहुत मुसलमानी तथा अँगरेज़ी शिष्टाचार के अनुकरण के फल-स्वरूप हैं। तो भी पिछले दोनों शिष्टाचारों की अस्वाभाविक चरम सीमा से ये नियम-मुक्त हैं—अर्थात् इनमें अपने को

"कम-तरीन" कहना और पिता को "धन्यवाद" देना नहीं बताया गया है

शिष्टाचार के जितने स्थान और अवसर हैं उन सब का ऐसा पूर्ण और निश्चित विवेचन करना कि कोई बात छूटने न पावे, प्रथम प्रयास में—विशेष कर हमारे लिए—कठिन है। तथापि जो कुछ अगले पृष्ठों में लिखा गया है उससे साधारणतया व्यवहारी काम-काज सन्तोष-पूर्वक चल सकता है और शिष्टाचार की महत्ता तथा आवश्यकता सूचित हो सकती है।

इस संग्रह में कहीं-कहीं पुनरुक्ति दोष आगया है जिसका कारण यह है कि किसी एक व्यवहार का काम अनेक अवसरों पर पड़ता है और उस प्रसंग पर इसका उल्लेख करना आवश्यक होता है। आशा है, हिन्दुस्थानी समाज की वर्त्तमान परस्पर उदासीन परिस्थिति में इस पुस्तक से लोगों में कुछ मेल-जोल बढ़ेगा।

कामताप्रसाद गुरु

विषय-सूची

—:*:—

हिन्दुस्थानी शिष्टाचार

प्रथम अध्याय

शिष्टाचार का स्वरूप

(१) शिष्टाचार का लक्षण और महत्त्व

'शिष्टाचार' शब्द का अर्थ शिष्ट (सभ्य) लोगों का आचार (बर्त्ताव) है। शिष्टाचार में उन सब आचरणों का समावेश होता है जो शिक्षित जनों के योग्य समझे जाते हैं और जिनके व्यवहार से किसी समाज वा व्यक्ति को अपना काम-काज स्वतन्त्रता-पूर्वक करने का सुभीता रहता है और उसके मन को सन्तोष तथा आनन्द प्राप्त होता है। इस लक्षण के अनुसार दूसरे को अपने काम में सुभीता और सन्तोष पहुँचाना ही शिष्टाचार का मुख्य उद्देश है। यदि कोई समाज या व्यक्ति ऐसा काम करता हो जिसे अधिकांश लोग अनुचित समझते हैं तो केवल शिष्टाचार के अनुरोध से अन्य समाज वा व्यक्ति उस अनुचित कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। ऐसे अनुचित कार्यों के रोकने के लिये व्यक्ति, समाज अथवा सरकार को अपने अन्य कर्त्तव्यों या अधिकारों का उपयोग करना आवश्यक होता है। यद्यपि इन कर्त्तव्यों और अधिकारों का विवेचन करना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है, तो भी इस विषय में शिष्टाचार का यह उपयोग हो सकता है कि अनुचित कार्य करने-वाले के साथ बातचीत और व्यवहार करने में दूसरा मनुष्य ऐसा बर्त्ताव करे जिससे उस व्यक्ति को बिना कारण मानसिक वा शारीरिक कष्ट न

पहुँचे; पर परोक्ष रूप से उसे अपनी दुष्कृति पर थोड़ा-बहुत पश्चात्ताप अवश्य हो। शिष्टाचार शिष्ट लोगों का आचार है, अतएव इस विषय के साथ बहुधा "शठं प्रति शाठ्यं" अथवा "काँटे के बदले फूल" की नीति का विचार नहीं किया जा सकता। सभ्य व्यवहार किसी को दण्ड देने या उससे बदला लेने से विशेष सम्बन्ध नहीं रखता। नीति के व्यावहारिक उपयोग के समान शिष्टाचार का मुख्य उद्देश यही है कि मनुष्य दूसरे के साथ वैसा ही बर्त्ताव करे जैसा वह उससे अपने साथ कराना चाहता है।

आजकल शिष्टाचार का एक भ्रामक अर्थ प्रचलित है, अर्थात् शिष्टाचार को लोग इन दिनों चापलूसी अथवा ऊपरी कपट-पूर्ण नम्रता समझने लगे हैं। "सत्य हरिश्चन्द्र" और "मुद्राराक्षस" नाटकों में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'गुरु', 'महात्मा,' 'चतुर' आदि शब्दों के समान 'शिष्टाचार' भी काल-चक्रानुसार अर्थदोष से दूषित हो गया है; परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में 'शिष्टाचार' शब्द का प्रयोग बहुधा वाच्यार्थ ही में हुआ है, अतएव बिना किसी विशेष कारण के इसका दूसरा कोई अर्थ ग्रहण करना अनुचित होगा। कभी-कभी शिष्टाचार से विनय और नम्रता की उस चरमावस्था का भी अर्थ लिया जाता है जो मुसलमानी 'तकल्लुफ' शब्द से सूचित होती है, जिसके कारण यह कहावत प्रचलित हुई है कि "आप आप करने में गाड़ी चल दी"।*

---

*लखनऊ के स्टेशन पर दो चार शिक्षित मुसलमान महोदय रेल से प्रवास करने के लिए खड़े थे। जब गाड़ी स्टेशन पर आई तब वे लोग 'तकल्लुफ' की उमङ्ग में एक दूसरे से कहने लगे कि क़िबला, आप पहले बैठिये, हज़रत, आप पहले सवार हूजिये। अशिष्ट कहलाने के भय से किसी ने भी गाड़ी में पहले सवार होना ठीक नहीं समझा और उन लोगों में कुछ समय तक इसी प्रकार शिष्टाचार का व्यवहार होता रहा। इतने में गाड़ी चल दी और वे लोग वहीं खड़े रह गये।

इस अर्थ में भी यहाँ शिष्टाचार का विचार न किया जायगा। शिष्टाचार का मूल अर्थ जो शिष्टों का आचार है उसीकी दृष्टि से हम इस विषय का विवेचन करने का प्रयत्न करेंगे।

शिष्टाचार धर्म के समान (और उसी के अन्तर्गत) मनुष्यत्व का एक विशेष चिह्न है। इस गुण से मनुष्य की शिक्षा, सुरुचि और सभ्यता का परिचय मिलता है। शिष्टाचारी व्यक्ति अपने कुल, जाति और देश की एक शोभा है। शिष्टाचार से अधिकांश में मनुष्य के स्वभाव की भी जांच हो जाती है। इस गुण का पालन करने वाले के प्रति लोगों को श्रद्धा, विश्वास और आदर होता है और वह अपने गुणों से दूसरों में भी वही गुण उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। विनय और नम्रता में ऐसा प्रभाव है कि यदि मनुष्य इनका उपयोग अपने आत्म-गौरव के साथ-साथ करे तो एक वार उसका शत्रु भी पूर्व-संस्कार छोड़कर उसके गुणों पर मुग्ध हो सकता है। विनयी व्यक्ति के साथ अशिष्ट मनुष्य भी सहसा अशिष्टता का व्यवहार करने का साहस नहीं कर सकता। शिष्ट व्यवहार मनुष्य के अस्थिर चित्त को शान्त कर उसे विचार करने का अवसर देता है और उससे अपनी भूलों पर सहर्ष पश्चात्ताप भी करा सकता है। सारांश यह है कि शिष्टाचार शील के समान मनुष्य का एक भूषण है।

जो शिष्टाचार सीमा से अधिक हो जाता है उससे बहुधा दोनों ओर हानि होती है। इस अवस्था में मनुष्य या तो संकोच के कारण स्वयं अड़चन में पड़ता है अथवा अति शिष्टाचार से वह अपने व्यवहारी को अप्रसन्न कर देता है। अतएव अति शिष्टाचार की अवस्था से बचने की सदैव चेष्टा करनी चाहिये और यदि इस विषमावस्था से किसी समय विशेष हानि होने की संभावना हो तो उस समय शिष्टाचार का थोड़ा बहुत अपकर्ष क्षमा के योग्य है। इस विषय को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना आवश्यक जान

पड़ता है। मान लीजिए कि यदि आप अपने मित्र के यहाँ किसी आवश्यक कार्य के अनुरोध से ऐसे समय जा पहुँचें जब वह स्नान-भोजन आदि के विचार में हो, तो उस समय आपको उससे कष्ट के लिए क्षमा माँगकर तुरन्त यह स्पष्ट कह देना चाहिये कि हम विवश होकर आपको इस समय कष्ट दे रहे हैं। पश्चात् शीघ्र ही अपना काम निवटाकर उसके पास से चला आना चाहिये। यदि आप स्वार्थ-वश कुछ अधिक समय तक वहाँ ठहरकर अपने मित्र के कार्य में अड़चन उत्पन्न करेंगे, तो सम्भव है कि आपका मित्र संकोच को त्यागकर आपके जाने के लिए कुछ ऐसा संकेत कर देवे जिससे आपको खेद हो और आप दोनों के मनों में थोड़ा बहुत वैमनस्य हो जाय। फिर यदि आपका मित्र अति-शिष्टाचार के अनुरोध से आपके आगमन को अपना अहोभाग्य प्रकट करे तो उस दशा में भी आपको बुरा लगेगा।

(२) शिष्टाचार और सदाचार

शिष्टाचार सदाचार का एक अंग है और एक से दूसरे का अभ्यास तथा वृद्धि होती है; तथापि इन दोनों विषयों में बहुत-कुछ अन्तर है। सदाचार का धर्म से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है और उसकी अवहेलना करना पाप समझा जाता है; परन्तु शिष्टाचार का सम्बन्ध बहुधा समाज अथवा व्यक्ति के सुभीते तथा सन्तोष से है और उसकी अवज्ञा पाप के समान गर्हित नहीं मानी जाती, यद्यपि उससे दूसरे लोग सहज में अप्रसन्न हो सकते हैं। सदाचार सर्वत्र और सर्वदा अटल है; परन्तु शिष्टाचार में देश, काल और पात्र के अनुसार परिवर्त्तन हो सकता है। इसके अतिरिक्त सदाचार का अभ्यास एक कठिन कार्य है; पर शिष्टाचार के अभ्यास में विशेष कठिनाई नहीं है। सदाचार की अवहेलना से भयंकर आत्मिक परिणाम उपस्थित हो सकते हैं; पर शिष्टाचार के अभाव में सहसा वैसा भविष्य नहीं हो

सकता। सदाचार के अभाव में लोग बहुधा एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं हो जाते; पर शिष्टाचार के अभाव में ऐसा प्रायः होता है। सदाचार मन, वचन और कर्म की एकता के रूप में देखा और पाला जाता है; परन्तु शिष्टाचार बहुधा वचन और क्रिया ही से सम्बन्ध रखता है। यदि शिष्टाचार में मन की शुद्ध प्रेरणा भी मिल जाय तो सोने में सुगंध की कहावत पूरी-पूरी घट सकती है और उस समय शिष्टाचार निरा शिष्टाचार नहीं रहता; किन्तु पूरा सदाचार हो जाता है।

(३) शिष्टाचार और चापलूसी

दूसरों को प्रसन्न करने के लिए अत्यन्त और अनावश्यक मिथ्या प्रशंसा अथवा नीच कार्य करना चापलूसी है; पर प्रसंग पड़ने पर उचित रीति से दूसरों की थोड़ी-बहुत आवश्यक प्रशंसा वा सेवा करना शिष्टाचार है। चापलूसी और शिष्टाचार के इस सूक्ष्म भेद पर ध्यान न देने ही से लोगों में शिष्टाचार का अर्थ चापलूसी प्रचलित हो गया है। चापलूसी बहुधा अनुचित स्वार्थसाधन के लिए आत्म-गौरव को त्यागकर मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति अथवा अभ्यास के आधार पर की जाती है; परन्तु शिष्टाचार स्वार्थ-साधन से विशेष सम्बन्ध नहीं रखता और उसमें आत्म-गौरव का दुर्लक्ष्य भी नहीं होता। यद्यपि शिष्टाचार की प्रवृत्ति भी थोड़ी-बहुत स्वाभाविक रहती है; तथापि चापलूसी के समान वह कुटेव का रूप धारण नहीं करती। यदि चापलूसी करने-वाले मनुष्य के विचारों और कार्यों में कोई हस्तक्षेप न करे तो वह प्रत्यक्ष रूप से, किसी दिन, दिन को रात और रात को दिन कहने के लिए भी तैयार हो जाता है, पर शिष्टाचारी मनुष्य असत्य को भी अपना गौरव रखकर प्रकट करेगा। बिना सोचे विचारे और बिना उचित आवश्यकता के किसी की "हाँ में हाँ" और "नहीं में नहीं"

मिलाना चापलूसी वा चाटुकारिता है; परन्तु प्रत्यक्ष रूप से किसी का जी दुखाये बिना, सोच समझकर अपनी उचित सम्मति देना अथवा आवश्यकता होने पर मौन धारण करना शिष्टाचार वा सभ्यता है।

दूसरों को सदा प्रसन्न रखना बहुत कठिन है; पर संसारी व्यवहार में उचित उपायों से दूसरों को प्रसन्न रखने की आवश्यकता होती है और इसके लिए शिष्टाचार ही उपयुक्त साधन है, चापलूसी नहीं। जब शिष्टाचार अपनी सीमा से बाहर हो जाता है तब वह चाटुकारिता का रूप धारण कर लेता है और उस समय वह निन्दनीय है। इस प्रकार का मिथ्या शिष्टाचार बहुधा दोनों व्यवहारियों के लिए दुःखदायी होता है। चापलूसी को मान देनेवाले लोग भी उसे सिद्धान्त की दृष्टि से अनुचित समझते हैं, चाहे प्रयोग में वे उसे वैसा न समझते हों; परन्तु उचित शिष्टाचार को प्रायः सभी लोग सिद्धान्त और प्रयोग में आदर और गुण-ग्राहकता की दृष्टि से देखते हैं। सारांश में हम इस भेद को ऐसा भी मान सकते हैं कि उचित चापलूसी शिष्टाचार है और अनुचित शिष्टाचार चापलूसी है। चापलूसी की आवश्यकता सदैव और सर्वत्र नहीं होती; पर मनुष्यों के परस्पर-व्यवहार में शिष्टाचार का काम पग-पग पर पड़ता है। हम लोग चापलूसी का अवसर टाल भी दे सकते हैं; पर शिष्टाचार टाला नहीं जा सकता। कभी-कभी चापलूसी हृदय की एक ऐसी दूषित अवस्था से भी उत्पन्न होती है जिसमें सदैव स्वार्थ-साधन की विशेष लालसा नहीं रहती; किन्तु दूसरों को प्रसन्न करने की एक प्रकार की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही दिखाई देती है। इस प्रकार की चापलूसी सर्वथा निन्दनीय है, क्योंकि यह दासता के उन भावों से उत्पन्न होती है जो

पराधीनता के कारण किसी भी समाज के स्वभाव में सम्मिलित हो जाते हैं।

(४) शिष्टाचार और स्वाधीनता

बहुधा नवयुवकों के मन में स्वाधीनता की एक विचित्र ही कल्पना रहती है। वे समझते हैं कि मनमाना काम करना ही सच्ची स्वाधीनता है, चाहे उसमें दूसरों की अथवा स्वयं उन्हीं की कैसी ही हानि क्यों न हो। इस दृष्टि से वे शिष्टाचार को स्वाधीनता का बाधक समझते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार उसके अनुरोध से लोगों को कई काम केवल दूसरों के सुभीते के विचार से करने पड़ते हैं। अनेक तत्ववेत्ताओं ने स्वाधीनता का लक्षण बताने का प्रयत्न किया है; परन्तु उन्होंने स्वेच्छाचार को स्वाधीनता कभी नहीं माना। यथार्थ में जब तक मनुष्य सामाजिक प्राणी है तब तक वह स्वेच्छाचार का पालन सदा और सर्वत्र नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करने में उसे पद-पद पर स्वाभाविक तथा कृत्रिम रुकावटों का सामना करना पड़ता है जो उसके कार्यों की सफलता में विघ्न डालती हैं। मनुष्य संसार से विरक्त होकर वन में रहने पर भी स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि वहाँ भी कई बातों के लिए उसे दूसरों पर अवलंबित होना पड़ेगा। इसलिए एक विद्वान् ने स्वाधीनता का यह लक्षण कहा है कि "दूसरों को किसी तरह की हानि न पहुँचाकर और अपने हित के लिए किये गये दूसरे के यत्न में बाधा न डालकर, जिस तरह से हो उस तरह, अपने स्वार्थ-साधन की स्वतन्त्रता का नाम स्वाधीनता है"। यदि दूसरों की स्वतन्त्रता का विचार न किया जाय तो मानवी और पाशविक स्वतन्त्रता में कोई अन्तर न रहे। अतएव शिष्टाचार स्वाधीनता का बाधक नहीं हो सकता, वरन वह इसका साधक होता है। नियमानुसार काम होने पर प्रत्येक मनुष्य को अपना

काम निर्विघ्न रीति से सम्पन्न करने का अवसर प्राप्त होता है और यही सुभीता यथार्थ में सच्ची स्वतन्त्रता है। यदि हम मनमाना काम करके दूसरों के कार्यों में वा विचारों में बाधा डालेंगे तो यह कब सम्भव है कि दूसरे लोग हमारे कार्यों वा विचारों में बाधा न डालें अथवा हम अपने इस आचरण से स्वयं अपनी ही स्वतन्त्रता स्थिर रख सकें? दूसरों की बातों में हस्तक्षेप करने में हम स्वयं अपनी अनुचित प्रवृतियों के दास बन जाते हैं। तब हमारी यथार्थ वा कल्पित सच्ची स्वतन्त्रता कहाँ रही? इस दृष्टि से आज्ञापालन, मनोदमन, मधुर-भाषण आदि गुणों को स्वाधीनता का साधक मानना पड़ेगा। समाज में रहकर यदि हम उसके साथ उचित व्यवहार न करेंगे तो समाज हमारी रक्षा न करेगा अथवा हमसे "शाप वा चाप" के द्वारा उचित बर्ताव करावेगा। यदि हम समाज की आज्ञा न मानेंगे तो समाज के काम-काज में गड़बड़ होगी और उस अव्यवस्था का फल हमें भी भोगना पड़ेगा। यह कभी नहीं हो सकता कि हम एक समाज को छोड़कर किसी दूसरे समाज में न जायँ, क्योंकि समाज में रहना एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। तब हम नियमपूर्वक चलकर ही अपनी तथा अपने समाज की स्वतन्त्रता को रक्षित रख सकते हैं। विद्वानों ने कहा है कि "नियम स्वतन्त्रता का प्राण है"।

(५) शिष्टाचार और सत्यता

कुछ लोगों की यह धारणा हैं कि शिष्टाचार एक मिथ्या व्यवहार है और शिष्टाचारी व्यक्ति परोक्ष रूप से सत्यता का तिरस्कार करता है। इसमें सन्देह नहीं कि शिष्टाचार में बहुधा अप्रिय और अनावश्यक सत्यता प्रकट नहीं की जाती; तथापि सत्य का यह लोप झूठ बोलने अथवा धोखा देने की प्रवृत्ति से नहीं किया जाता। शिष्टाचार का प्रधान उद्देश्य दूसरों को

सुभीता और संतोष देना है, अतएव जिस समय सत्यता से किसी को व्यर्थ हानि अथवा अप्रसन्नता प्राप्त होने की संभावना हो, उस समय सत्यता को प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसी अवस्था में मनुष्य उदासीनता (मौन) धारण करके ही मूर्ख अथवा अशिष्ट होने से बच सकता है।

नीति और धर्म की दृष्टि से भी प्रत्येक अवसर पर सत्यता को प्रकट करने की आवश्यकता नहीं मानी जाती है। यदि किसी सत्य को प्रकट करने से व्यक्ति-गत आक्षेप अथवा किसी का अपमान होने की संभावना हो तो सत्य बात प्रकट करना अनुचित है। इसी प्रकार यदि उससे प्रत्यक्ष रूप में हानि अधिक और लाभ कम होने का भय हो तो उसे प्रकट करना मूर्खता है। इसके सिवा अधिकांश लोग सत्य को भी एकाएकी सत्य नहीं मानते; क्योंकि वे साधारण व्यवहार में बहुधा असत्य, अतिशयोक्ति और अर्ध-सत्य सुना करते हैं। अतएव शिष्टाचार की दृष्टि से सत्य को बिना सोचे-विचारे अथवा निर्भय होकर प्रकट करने में जोखिम है। कभी-कभी तो किसी के दोष से सम्बन्ध रखने-वाली सत्यता को अकारण ही प्रकट कर देने से मनुष्य पर अभियोग आरोपित कर दिया जाता है।

शिष्टाचार ऐसी सत्यता को प्रकट होने से नहीं रोक सकता जो सब से अधिक लोगों को सब से अधिक लाभ पहुँचाती है—अर्थात् नीति और सदाचार की उच्चतम प्रेरणा से जो सत्य प्रकट किया जाता है वह शिष्टाचार की सीमा के बाहर है। इसी प्रकार सत्य की खोज में जो वादविवाद अथवा आन्दोलन होता है उसमें भी शिष्टाचार के सत्य की अवहेलना की जा सकती है। यदि शिष्टाचार के अनुरोध से इस प्रकार के अटल सत्य का प्रचार न हो तो सत्य-ज्ञान की उन्नति होना असम्भव हो जाय

और लोगों को सदाचार और शिष्टाचार में अन्तर समझने की योग्यता ही न रहे।

सारांश यह है कि शिष्टाचार में सत्य के प्रति कोई अनास्था नहीं दिखाई जाती और न-जान-बूझकर किसी को हानि पहुँचाने अथवा धोखा देने के लिए समयानुकूल असत्य का प्रयोग किया जाता है। उसमें सत्य की केवल कठोरता को कुछ कोमल कर देते हैं।

(६) शिष्टाचार के साधन

साधारणतया शिष्टाचार के प्रमुख साधन मन, वचन और कर्म हैं; पर, जैसा पहले कहा जा चुका है, उसके पालन में मन की विशेष प्रेरणा नहीं होती; यद्यपि उसमें मनुष्य के स्वभाव का प्रभाव अवश्य पड़ता है। शिष्टाचारी व्यक्ति को शान्त स्वभाव और विवेक की बड़ी आवश्यकता है क्योंकि इनके बिना वह उचित अथवा अनुचित कार्यों के विषय में ठीक-ठीक विचार नहीं कर सकता। शिष्टाचार में विचार और कर्म के साथ कुछ हृदय के मेल की भी आवश्यकता है और इसके साथ उसमें बुद्धि और स्मरण का भी काम पड़ता है, इसलिए शिष्टाचार के साधनों में वचन और क्रिया के साथ कई अंशों में मन की भी आवश्यकता होती है।

शिष्टाचार का दूसरा साधन वचन है। हमें दूसरों के साथ ऐसे वचन बोलना चाहिए जो प्रिय हों और यथा-संभव सत्य भी हों। यदि किसी समय सत्य बोलने का प्रयोजन न हो तो हमें मौन धारण कर लेना चाहिए अथवा ऐसे वचन बोलना चाहिए जिनसे श्रोता का थोड़ा बहुत समाधान हो जाय और उसकी कोई हानि न हो। सदाचार की दृष्टि से भी अप्रिय सत्य का निषेध है;

पर जान-बूझकर धोखा देने के लिए अथवा हानि पहुँचाने के लिए झूठ बोलना दोनों प्रकार से निन्दनीय है।

शिष्टाचार-सम्बन्धी क्रियाओं के अन्तर्गत वे सब कार्य हैं जिनका परोक्ष वा प्रत्यक्ष सम्बन्ध दूसरों से है। शिष्टाचार में उन सब क्रियाओं को त्याज्य मानते हैं जिनसे दूसरों को असुविधा अथवा असन्तोष होता है। मान लीजिए कि किसी मनुष्य को बहुत हँसने में आनन्द मिलता है और वह सड़क के एक किनारे खड़ा होकर जहाँ किसी की कोई हानि होने की सम्भावना नहीं है जोर-जोर से हँसता है। यद्यपि उस मनुष्य को इस काम से रोकने का अधिकार किसी को नहीं है, तो भी वह स्वयं इस बात का विचार कर सकता है कि सड़क पर आने-जाने-वाले लोगों को मेरे इस काम से कोई असुविधा अथवा असन्तोष तो नहीं होता? यदि ऐसा हो तो उसे शिष्टाचार की दृष्टि से अपनी क्रिया बन्द कर देनी चाहिए। मनुष्य की ऐसी क्रियाएँ अनेक हैं जिनसे बहुधा दूसरों के संतोष और सुभीते का सम्बन्ध रहता है; इस-लिए उसे अपने परस्पर-जीवन-सम्बन्धी कार्यों में शिष्टाचार का ध्यान रखना परम आवश्यक है।

शिष्टाचार की थोड़ी बहुत प्रवृत्ति सभी लोगों में स्वाभाविक होती है। जो लोग शिष्टाचार के नाम से नाक-भौं सिकोड़ते हैं और उसे अनावश्यक नियमों का संग्रह समझते हैं, वे भी बहुधा दूसरों के द्वारा किये गये व्यवहार की अनुकूल अथवा प्रतिकूल आलोचना करते हैं जिससे इस विषय की उपयोगिता पूर्णतया सिद्ध होती है। यथार्थ में शिष्टाचार की उत्पत्ति सभ्य समाज में आवश्यकता और अनुकरण से आप-ही-आप होती है। हाँ, यह बात अवश्य है कि कोई सामाज कम और कोई अधिक शिष्टा-चारी होता है; पर इससे इस विषय की कोई हीनता सूचित नहीं होती।

शिष्टाचार की प्रवृत्ति आवश्यकता और अनुकरण के अतिरिक्त पुस्तकावलोकन, प्रवास और सामाजिक तथा सार्वजनिक जीवन से भी वृद्धि पाती है। स्वयं प्रशंसा पाने और दूसरों को उचित रीति से प्रसन्न करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति से भी शिष्टाचार के भावों की उन्नति होती है।

—:*:—

दूसरा अध्याय

प्राचीन आर्य-शिष्टाचार

(१) वैदिक काल में

वैदिक-काल में प्रचलित शिष्टाचार का पता हमें आर्यों की प्राचीन सभ्यता से लग सकता है। हमारे पूर्वजों ने कई सहस्र वर्ष पहले अनेक विद्याओं और कलाओं में विशेष उन्नति कर ली थी; इसलिए यह सम्भव नहीं कि समाज में उपयोगी होनेवाले शिष्टाचार सरीखे गुण का उनमें अभाव रहा हो। जो जाति शेष संसार की बाल्यावस्था के समय धातुओं का उपयोग जानती थी, सोने-चाँदी के गहने और युद्ध के अस्त्र-शस्त्र तैयार कर सकती थी, तत्वज्ञान के गूढ़ विषयों पर सम्मति दे सकती थी और "हज़ारों खंभों के भवन" बना सकती थी, वह अशिष्ट कैसे रह सकती थी? वेद-कालीन साहित्य से जाना जाता है कि उस समय केवल पुरुष ही नहीं, किन्तु स्त्रियां भी शिक्षित होती थीं। वेदों के अनेक मन्त्रों की रचना स्त्रियों ने की है। यज्ञ-कार्य में पुरुषों के साथ स्त्रियाँ सम्मिलित होती थीं और ये विशेष आदर की दृष्टि से देखी जाती थीं। उस समय परदे की प्रणाली प्रचलित नहीं थी और कन्याएँ उपवर होने पर स्वयंवर की रीति से विवाही जाती थीं।*

सभ्यता की इस अवस्था में शिष्टाचार की अवहेलना नहीं हो सकती थी। विवाह के समय वर-कन्या एक दूसरे को जो वचन देते थे, उनसे वैदिक-काल के शिष्टाचार का बहुत कुछ ज्ञान हो

---

* "भारत की प्राचीन सभ्यता का इतिहास"।

सकता है। वे वचन ये हैं—(वर और कन्या को उपदेश) "तुम दोनों यहां मिले हुए रहो; कभी अलग मत होओ; नाना प्रकार के भोजनों का उपभोग करो; अपने ही घर में रहो और अपने पुत्र-पौत्रों के साथ रहकर सुख भोगो।"

(वर-कन्या कहते हैं) "प्रजापति हमें सन्तान देवें और अर्यमन् हमें वृद्धावस्था पर्य्यन्त मिला हुआ रक्खें"।

(कन्या को उपदेश) "हे कन्ये, मंगल शकुनों के साथ तुम अपने पति के गृह में प्रवेश करो। हमारे दास-दासियों और पशुओं को लाभ पहुँचाओ"। "तुम्हारे नेत्र क्रोध से मुक्त रहें। तुम अपने पति का सुख-साधन करो और हमारे पशुओं को लाभ पहुँचाओ। तुम्हारा चित्त प्रसन्न और तुम्हारी छवि सुन्दर रहे। तुम वीर पुत्रों की माता होओ और देवों की भक्ति करो।*

इन मन्त्रों से ज्ञात होता है कि आर्य लोग दास-दासियों के प्रति भी सद्-व्यवहार करते थे। क्रोध के परिहार और चित्त की प्रसन्नता पर उनकी विशेष दृष्टि रहती थी जो शिष्टाचार के पालन के लिए बहुत आवश्यक हैं। वधू के सुख-चैन का विचार करना भी उनके सदाचार का परिचय देता है।

ब्राह्मणों के लिए नियत किये गये चार आश्रमों की संस्था से भी हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि आर्यों को सदाचार और शिष्टाचार का कितना अधिक ध्यान था! बड़ों का आदर करना, सत्य बोलना और प्रतिज्ञा-पालना हमारे पूर्वजों के मुख्य कर्तव्य थे। ब्राह्मणों को अपने जीवन में शासन के कड़े नियम पालने पड़ते थे और किसी भी अवस्था में उन्हें भोग-विलास में रहने की आज्ञा नहीं थी।

---

* ऋग्—१०,८५,४२,४७।

प्राचीन काल में अतिथि-सत्कार की जो उच्च प्रथा थी उसमें शिष्टाचार का अधिकांश समावेश होता था। सामाजिक कार्यों के लिए नियम बनाना और उनका पालन करना आर्य-जाति का एक प्रधान लक्षण था। राजा और प्रजा तन-मन-धन से ऋषियों का सत्कार करते थे और प्रजा राजा को ईश्वर का अंश मानती थी। राजा लोग भी प्रजा के प्रेम की प्राप्ति के लिए सतत उद्योग करते थे।

वैदिक-काल के शिष्टाचार का स्पष्ट और पूर्ण विवरण सरलता से उपलब्ध न होने के कारण केवल पूर्वोक्त संक्षिप्त विवेचन ही लिखा जा सका है यदि वैसा विवरण उपलब्ध भी होता, तो भी वह यहां विस्तार-पूर्वक न लिखा जा सकता; क्योंकि इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य केवल आधुनिक शिष्टाचार का वर्णन करना है।

(२) रामायण-काल में

वैदिक-काल की अपेक्षा इस काल में शिष्टाचार पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा, क्योंकि इस समय समाज का संगठन अधिक दृढ़ हो गया था और जाति-भेद की प्रथा प्रचलित हो गई थी। धर्म-संस्कार और यज्ञ-यागादि भी इस समय विशेष आडम्बर से किये जाने लगे और प्राचीन प्रकृति-पूजा के बदले प्रकृति के देवताओं की पूजा होने लगी।

रामायण-काल में सामाजिक सदाचार की ओर विशेष प्रवृत्ति होने के कारण शिष्टाचार की भी परीक्षा की जाती थी। केवल वाल्मीकि रामायण ही से तत्कालीन सभ्यता और शिष्टाचार की अनेक बातें जानी जा सकती हैं। यहाँ इस विषय की कुछ बातें हम संक्षेप में लिखते हैं।

उस समय अपने वचन का पालन करना और धर्म-संकट उपस्थित होने पर कर्त्तव्य का निश्चय तथा अनुसरण करना प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपना ध्येय समझता था। माता-पिता की आज्ञा मानना और छोटे-बड़ों के साथ शिष्ट-व्यवहार करना भी उस काल में प्रधान धर्म समझा जाता था। जाति-भेद प्रचलित होने पर भी उस समय जाति-द्रोह नहीं था और छोटी जाति के योग्य पुरुष बड़ी जातिवालों से स्वतंत्रता-पूर्वक मिलते थे। दशरथ और रामचन्द्र के चरित्रों से ये बातें सूचित होती हैं। गुह-निषाद और शवरी के चरित्र इन बातों को पुष्ट करते हैं। महावीर सीता से और सीता महावीर से जिस प्रकार विनयपूर्ण व्यवहार और मधुर सम्भाषण करते हैं उससे तत्कालीन सभ्यता और शिष्टाचार का अच्छा परिचय मिलता है। सीता का व्यवहार देखकर स्वयं महावीर कहते हैं—

"तुल्य शील, वय, कुल चरित्र सब ही हैं याके।
सीता राघव-जोग जोग राघव सीता के॥"

युद्ध सरीखे स्वार्थमय और संहारकारी अवसर पर भी आर्य लोग अपनी प्रतिष्ठा और कर्त्तव्य का ध्यान रखते थे। शत्रु के साथ उचित व्यवहार किया जाता था और लूट-पाट तथा अत्याचार का निषेध था। धर्म-युद्ध के जो नियम निश्चित किये गये थे उन्हींके अनुसार युद्ध होता था और जो अधर्म युद्ध करता था वह कायर तथा पापी समझा जाता था।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में महाराजा जनक के ज्ञान, स्वार्थ-त्याग और उदारता की बड़ी प्रशंसा पाई जाती है। आपने एक बार अष्टावक्र ऋषि के लिये धूमधाम से सवारी में जाते हुए भी राज-मार्ग छोड़ दिया था, और उन्हें रथ में बिठाकर अपने साथ ले गये थे।

पूर्वोक्त संक्षिप्त उदाहरणों से रामायण-कालीन उच्च सभ्यता और सूक्ष्म शिष्टाचार-बुद्धि का बहुत कुछ पता लगता है।

(३) महाभारत-काल में

भारतीय काल में प्रचलित शिष्टाचार का बहुत कुछ उल्लेख "महाभारत-मीमांसा में" पाया जाता है जिसके आधार पर हम धन्यवाद-पूर्वक अगला वर्णन लिखते हैं—

महाभारत-काल में छोटे बड़ों को नमस्कार करते थे और बराबरी-वालों में कर-स्पर्श करने की रीति थी। नमस्कार कुछ झुक कर और दोनों हाथ जोड़ कर किया जाता था। ऋषियों तथा गुरु आदि से साष्टांग नमस्कार करने की रीति प्रचलित थी।

पति-पत्नी एक-दूसरे का नाम लेकर सम्बोधन करते थे और वे बाहर बागों में साथ-साथ घूमने के लिए भी जाते थे। उन्हें एक दूसरे का आदर करने का विशेष ध्यान रहता था।

लोग प्रिय भाषण करते थे और योग्यतानुसार सब का आदर करते थे। दीनों, दुर्बलों, रोगियों और स्त्रियों पर दया की जाती थी और बूढ़ों की सेवा होती थी। लोग क्रोध के अधीन न होते थे और वे सेवकों को सन्तुष्ट रखते थे।

शील के सम्बन्ध में महाभारत में एक आख्यान है जिससे इस गुण का महत्व सूचित होता है। एक बार असुरों का पराभव करने के लिए इन्द्र ने ब्राह्मण-रूप में प्रह्लाद से उनका शील माँगा। जब प्रह्लाद ने अपना शील इन्द्र को दिया तब उसी के साथ उनकी देह से श्री भी निकल गई। उसे देख प्रह्लाद ने पूछा कि तू कौन है? श्री ने उत्तर दिया कि मैं लक्ष्मी हूँ। जहाँ शील रहता है वहीं मैं रहती हूँ और वहीं सत्य, धर्म और बल भी

रहते हैं। जब तुमने इन्द्र को अपना शील दे दिया, तब उसके साथ मैं भी इन सब के साथ तुम्हारे शरीर से निकल आई।

भारतीय काल में जो-जो रीतियाँ दूषित समझी जाती थीं उनका भी उल्लेख पूर्वोक्त ग्रंथ में पाया जाता है। दैत्यों के आचरणों का वर्णन करते हुए उसमें लिखा है कि उनमें से धर्म निकल गया था। बड़े-बूढ़ों के आने पर वे लोग खड़े नहीं होते थे और उनका आदर-सत्कार भी नहीं करते थे। निन्दनीय काम करके जो लोग बहुत धन-संग्रह करते थे, वे उन्हें प्रिय थे। देवताओं का यज्ञ न किया जाता था और पितरों तथा अतिथियों को अन्न का भाग न दिया जाता था। रसोई करने-वाला पवित्रता न रखता था और तैयार किया हुआ भोजन भली-भाँति ढाँक-मूँद कर न रखा जाता था। वे लोग खाने के पदार्थों को आप खा जाते थे, बच्चों तथा नौकरों को उनका हिस्सा न देते थे। इस प्रकार का और भी बहुत वर्णन पूर्वोक्त ग्रंथ में पाया जाता है जिससे सूचित होता है कि महाभारत-काल में सभ्य व्यवहार की बारीक बातों पर भी बहुत ध्यान दिया जाता था।

रामायण-काल में जिस प्रकार रामचन्द्र आदर्श पुरुष हो गये हैं उसी प्रकार महाभारत-काल में श्रीकृष्ण आदर्श पुरुष थे। आप में दैवी और मानवी दोनों प्रकार के गुण थे। बाल-सखाओं के प्रति आप का अनुराग जैसा प्रसिद्ध है वैसा ही आप का किया हुआ भारतीय युद्ध का संगठन लोक-विख्यात है।

(४) स्मृति-काल में

स्मृति-काल में जो अनुमान से विक्रम-संवत् के आरंभ के आस-पास माना जाता है, शिष्टाचार-विषयक विवेचन अधिकता से किया हुआ पाया जाता है, क्योंकि इस काल में कई धर्म-शास्त्रों और स्मृतियों की रचना हुई थी। इन पुस्तकों में विशेष-

कर धार्मिक जीवन से सम्बन्ध रखने-वाले नियम पाये जाते हैं; परन्तु यत्र-तत्र इनमें शिष्टाचार-सम्बन्धी बातें भी मिलती हैं। स्मृतियाँ कई ऋषियों ने लिखी हैं जिनमें मनु-स्मृति सब से अधिक प्रसिद्ध है। भिन्न-भिन्न स्मृतियों में शिष्टाचार-सम्बन्धी जो नियम मिलते हैं उनमें से कुछ संक्षेपतः यहाँ लिखे जाते हैं—

(१) बुराई करने पर भी गुरु के सामने न बोले और गुरु के धमकाने पर भी कहीं चला न जाना चाहिये।

(२) कभी किसी की बुराई न करनी चाहिये, झूठ कभी न बोलना चाहिये और दिये हुए दान की प्रसिद्धि कभी न करनी चाहिये।

(३) लोगों को वही चीजें खिलानी चाहिये जिनको विद्वान् पसन्द करें और जो शीघ्र पचने-वाली हों।

(४) शरीर के अंग तथा नाखून बजाना नहीं चाहिये, दाँतों से नाखून काटना बुरा है। अंजुली से पानी पीना बुरा है। पाँव या हाथ से जल को पीटना या ताड़ना न चाहिए।

(५) बैठने के लिए आसन, ठहरने के लिए जगह, पीने के लिए पानी और मीठी बातें, ये चार चीजें भले आदमियों के यहाँ सदा बनी रहती हैं, कभी कम नहीं होतीं।

(६) अंगहीन या अधिक अंगवाले, मूर्ख, बूढ़े, कुरूप, निर्धन और जाति से हीन पुरुषों को भी ताना न दें।

(७) सूने मकान में अकेला न सोवे, अपने से बड़े को सोते से न जगावे।

(५) पौराणिक-काल में

पौराणिक-काल अनुमानतः सन् ३०० ईसवी से सन् १००० ई० तक माना जाता है। इस काल में कई धर्म-ग्रन्थ लिखे गये

जिनमें १८ पुराण प्रसिद्ध हैं। पुराणों में विशेषतः देवताओं की कथाएँ हैं; पर उनमें अनेक सदाचार-सम्बन्धी नियम और उपदेश भी पाये जाते हैं। अष्टादश पुराणों में विष्णु-पुराण अधिक प्रसिद्ध है। इसमें सदाचार और शिष्टाचार-सम्बन्धी जो नियम पाये जाते हैं उनमें से कुछ ये हैं—

(१) जो लोग किसी की बुराई नहीं करते, किसी को कष्ट नहीं देते, उन पर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं।

(२) जब कोई दीन भिखारी गृहस्थ के द्वार पर भीख माँगने आवे तब इसे उसका बड़े प्रेम से आदर करना चाहिये, उसको खाने के लिए भोजन और पीने के लिए पानी देना चाहिए।

(३) जब कभी कोई सन्यासी किसी गाँव में जाय, तब वहाँ एक रात से अधिक न बसे और किसी बड़े शहर में पाँच रात से अधिक न ठहरे।

(४) जो लोग गर्भिणी स्त्री, वृद्ध पुरुष, बालक और रोगी को बिना भोजन कराये आप भोजन करते हैं वे पापी हैं।

(५) दुष्टों का साथ कभी न करे, क्योंकि बुरे आदमियों की थोड़ी भी संगति बुराई उत्पन्न करती है।

(६) जहाँ तक हो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर से अपनी बुद्धि को दूर हटाना चाहिये।

—: * :—

तीसरा अध्याय

आधुनिक हिन्दुस्थानी शिष्टाचार के भेद

शिष्टाचार का विषय इतना व्यापक है—अर्थात् इस गुण का प्रयोग करने के स्थल और अवसर इतने बहुत हैं—कि सब अवस्थाओं के लिए पूरे-पूरे नियम बनाना बहुत कठिन कार्य है। यद्यपि इस विषय के प्रयोग का सम्बन्ध मनोविज्ञान, नीति-शास्त्र और समाज-शास्त्र से है, तो भी यह स्वयं कोई शास्त्र नहीं है, क्योंकि इसमें हम कोई सिद्धान्त अथवा अटल नियम स्थापित नहीं कर सकते। अपने से बड़े को प्रणाम करने की प्रवृत्ति किसी स्वाभाविक प्रेरणा से अवश्य उत्पन्न होती है; पर वह सब अवस्थाओं में एक सी नहीं रहती और किसी विशेष अवस्था में मिट भी जाती है। शिष्टाचार केवल एक प्रकार की ललित कला है जिसका उद्देश्य दूसरों को सुभीता और सन्तोष देना है और जो बहुधा अभ्यास से आती है। ऐसी अवस्था में इस विषय का विवेचन सिद्धान्तों के आधार पर तथा पूर्णता से करना कठिन है। तो भी इस विषय के मुख्य-मुख्य स्वरूपों का वर्णन अधिकांश में क्रम-पूर्वक और स्पष्टता से किया जा सकता है।

शिष्टाचार को हम तीन विभागों में बाँट सकते हैं—(१) सामाजिक (२) व्यक्ति-गत (३) विशेष।

(१) सामाजिक शिष्टाचार

जो शिष्टाचार किसी समाज विशेष में प्रचलित है और जिसे उस समाज के व्यक्ति के लिए समाज के प्रति करना उचित

और आवश्यक है उसे सामाजिक शिष्टाचार कहते हैं। किसी बाहरी समाज के प्रति अवसर पड़ने पर उस समाज का शिष्टाचार-पालन भी सामाजिक शिष्टाचार का एक अंग है; परन्तु इस पुस्तक में उस शिष्टाचार का विचार न किया जायगा, क्योंकि उसके अनेक भेद हो सकते हैं और प्रत्येक भेद के लिए एक अलग पुस्तक की आवश्यकता है। इस ग्रन्थ का उद्देश्य तो केवल आधुनिक हिन्दुस्थानी समाज के शिष्टाचार का वर्णन करना है। 'समाज' शब्द भी बहुत व्यापक है और अभी तक उसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं बनाई गई; अतएव इस पुस्तक में समाज उन व्यक्तियों का समूह माना गया है जो विशेष काल वा स्थान से सम्बन्ध रखते हैं और जिनके रीति-रिवाज, सभ्यता और नैतिक तथा पादार्थिक अवस्था में बहुत कुछ सादृश्य रहता है। हिन्दुस्थानी समाज उस समाज का नाम है जो अधिकांश में मध्य-देश* का निवासी और हिन्दी भाषा-भाषी है। आधुनिक शब्द से गत और प्रचलित शताब्दी की लगभग उतनी अवधि का अभिप्राय है जिसके भीतर हमारे समाज की "भाषा, भोजन, भेष, भाव और भावी" में समष्टि-रूप से विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ और न होगा। समाज के पूर्वोक्त चिह्नों में किसी समय विशेष हेरफेर भी हो जाय, तो भी व्यक्तियों के सम्बन्ध से उनमें सादृश्य रहता ही है। यदि ऐसा न होता तो यह जानना कठिन हो जाता कि कौन व्यक्ति किस समाज का है। आधुनिक हिन्दुस्थानी शिष्टाचार के वर्णन में प्रायः उन्हीं सब रीति-रवाजों का वर्णन रहेगा जिनसे अधिकांश में हिन्दुस्थानी समाज की पहचान होती है।

---

* प्राचीन काल के मध्य-देश को आज-कल हिन्दुस्थान कहते हैं जो 'दक्षिण' का विरोधार्थी है। इस देश के निवासी हिन्दुस्थानी कहलाते हैं जिनकी भाषा हिन्दी (वा हिन्दुस्थानी) है और धर्म वैदिक है।

(२) व्यक्ति-गत शिष्टाचार

सामाजिक शिष्टाचार में हमें एक ही समय एक से अधिक व्यक्तियों के साथ सद्व्यवहार करना पड़ता है; पर व्यक्ति-गत शिष्टाचार में हमारा सम्पूर्ण ध्यान किसी एक ही व्यक्ति की आव-भगत में लगा रहता है। यद्यपि सामाजिक शिष्टाचार में भी व्यक्तिगत शिष्टाचार का भाव मिला रहता है, तो भी अनेक अवसर ऐसे आते हैं जिनमें व्यक्ति ही की प्रधानता रहती है। यदि किसी समय केवल व्यक्ति की प्रधानता हो, जैसे सभा में सभापति की और विदाई में अतिथि की होती है—तो उस समय हमें व्यक्ति-गत शिष्टाचार का विशेष ध्यान रखना चाहिए; पर साधारण रीति से सामाजिक शिष्टाचार के अवसर पर किसी एक व्यक्ति के प्रति विशेष शिष्टाचार का प्रयोग करने से अन्यान्य व्यक्तियों को अपमान प्रतीत हो सकता है। यद्यपि सामाजिक शिष्टाचार में ऊँच-नीच का भेद मानना प्रायः अनुचित है, तो भी शिष्टाचार पात्र की योग्यता के अनुसार घट-बढ़ सकता है। व्यक्ति-गत तथा सामाजिक शिष्टाचार में जो व्यवहारी समष्टि-रूप से अपना दृष्टि-कोण स्थिर रखता है वही अधिक शिष्ट और सभ्य समझा जाता है।

(३) विशेष शिष्टाचार

इस विभाग में उन सब व्यक्तियों के प्रति होनेवाले शिष्ट व्यवहार का समावेश होता है जिनके साथ किसी का व्यक्ति-गत अथवा विशेष सम्बन्ध होता है अथवा जो किसी विशेष अवस्था के कारण विशेष रूप से शिष्टाचार के पात्र माने जाते हैं। यद्यपि इस विषय के नियम अन्यान्य प्रकार के शिष्टाचार के नियमों से अधिकांश में भिन्न नहीं है; तथापि इसकी कई बातों में विशेषता है जिसके कारण इस विषय का एक अलग विभाग

किया गया है। उदाहरणार्थ, स्त्रियों की अथवा बूढ़ों की बातों का उत्तर देने में नम्रता की मात्रा साधारण से कुछ अधिक होनी चाहिए। समाज में सब को एक ही दृष्टि से देखना और उनके साथ एक-ही-सा व्यवहार करना इष्ट होने पर भी सर्वदा शक्य नहीं है; अतएव देश-काल-पात्र के अनुसार शिष्टाचार में कुछ भेद करना ही पड़ता है; पर उसमें इस बात का ध्यान अवश्य रक्खा जावे कि वैसे व्यवहार से अन्यान्य लोगों को असन्तोष का अवसर प्राप्त न हो।

—: * :—

चौथा अध्याय

सामाजिक शिष्टाचार

(१) सभाओं और पाठशालाओं में

सभाओं में प्रत्येक व्यक्ति को कम-से-कम तीन बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिये—(१) बैठक (२) बातचीत (३) शारीरिक क्रिया। जहाँ हम बैठे हों वहाँ हमें यह देखना चाहिए कि हमारे बैठने से किसी को कोई अड़चन तो नहीं होती। यदि हम अपने पास बैठने-वालों से यह पूछ लें कि उन लोगों को हमारे बैठने से कोई कष्ट तो नहीं है तो यह अनुचित न होगा। दूसरे के दृष्टिपथ को रोककर अथवा दूसरे से बिल्कुल सटकर बैठना अशिष्ट है। इसी प्रकार हाथ-पाँव फैलाकर और केवल अपने ही आराम का ध्यान रखकर बैठना भी निन्द्य समझा जाता है। जहाँ सभाओं में खड़े रहने का प्रयोजन पड़ जाता है वहाँ भी इस विषय का विचार रखना आवश्यक है। जिस समय सभा में व्याख्यान होता है अथवा सब लोग मौन धारण किये किसी विषय पर विचार करते हैं उस समय आपस में जोर-जोर से बातचीत करना अनुचित है। सभा में जिसे बोलने का अधिकार है वही सभापति की आज्ञा अथवा अनुमति से बोल सकता है। यदि अनधिकारी व्यक्ति को बोलने की इच्छा अथवा आवश्यकता हो तो वह सभा के कार्य में विघ्न डाले बिना सभापति की आज्ञा से बोले। शारीरिक क्रियाओं के सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि जोर से हँसना, खाँसना, नाक साफ करना, बार-बार आसन बदलना आदि कार्यों से प्रायः

सभी को असुविधा होती है; इसलिए ये कार्य अधिकांश में वर्ज्य हैं। सभाओं में बीड़ी आदि पीना भी निन्द्य है।

व्याख्याता को इतने जोर से बोलना चाहिए जिसमें सब श्रोता उसका भाषण सुन सकें और ऐसी भाषा का व्यवहार करना चाहिए जिसे अधिकांश श्रोता समझ सकें। बोलने में शीघ्रता न की जावे और शब्दों तथा अक्षरों का उच्चारण स्पष्टता से किया जावे। यथा-सम्भव भाषा से प्रान्तीयता को दूर रखना चाहिये। भाषण में व्यक्ति-गत आक्षेप करना अथवा ऐसे दृष्टान्त देना जिनसे श्रोताओं के हृदय पर आघात पहुँच सकता है असभ्यता का लक्षण है। वक्ता को अपने विषय के भीतर ही बोलना उचित है और उसे अपना व्याख्यान इतना न बढ़ाना चाहिए कि वह श्रोताओं को अरुचिकर हो जाय।

सभाओं के प्रबन्धकों को यह देखना चाहिए कि सब लोगों के बैठने तथा हवा और उजेले का ठीक प्रबन्ध है या नहीं। निमंत्रित तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों के स्वागत का और अन्यान्य लोगों को सभा-स्थान का मार्ग दिखाने का भी प्रबन्ध होना चाहिए। जहाँ तक हो सभाओं में स्वयंसेवकों की उपस्थिति अपेक्षित है। इन कार्य-कर्त्ताओं को अपने सद्व्यवहार से अपने कर्त्तव्य की शोभा बढ़ानी चाहिए। जो काम इन्हें सौंपा गया हो अथवा जिस उद्देश्य से इनकी नियुक्ति की गई हो उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए इन्हें प्रयत्न करना चाहिए। सभा-कार्य में अव्यवस्था होने पर प्रबन्धकों के साथ-साथ स्वयंसेवक लोग भी दोषी ठहराये जा सकते हैं। इन लोगों में वचन-माधुरी और क्रिया-चातुरी अवश्य होनी चाहिए।

सभाओं के विषय के साथ-साथ यहाँ पाठशालाओं के शिष्टाचार का भी विचार करना उपयुक्त होगा। यद्यपि

पाठशालाओं में शिष्टाचार के अधिकांश नियम शासन के नियमों में रहते हैं जिनका पालन आज्ञा की कठोरता के साथ कराया जाता है, तथापि ये (पिछले) नियम ऐसे नहीं हैं कि इनमें सदैव आज्ञा की ही आवश्यकता हो और इनका पालन दण्ड के भय से ही किया जाय। यदि विद्यार्थी (और शिक्षक भी) शिष्टाचार के मूल सिद्धान्त पर विचार करें तो उन्हें ज्ञान हो जायगा कि कक्षा में शान्ति रखना और एक समय एक ही व्यक्ति का बोलना केवल आज्ञा के विषय नहीं हैं; किन्तु विवेक के भी हैं। कक्षा में जिस समय शिक्षक पाठ पढ़ा रहा हो उस समय बातचीत करना अथवा अनुमति के बिना प्रश्न पूछना अनुचित है। यदि किसी विद्यार्थी को कोई शंका उत्पन्न हो तो वह पाठ का एक खंड समाप्त होने पर अपना हाथ उठाकर शिक्षक का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करे और उसकी आज्ञा से अपनी शंका खड़े होकर प्रकट करे। केवल असामयिक वाद-विवाद की दृष्टि से शंका उपस्थित करना अनुचित है। यदि शिक्षक किसी विद्यार्थी की शंका को साधारण या अनुचित समझकर उसका समाधान न करे तो विद्यार्थी शिक्षक के कार्य में अधिक विघ्न न डालकर किसी अन्य उपयुक्त अवसर पर अपनी शंका का समाधान करा लेवे। शिक्षक और शिष्य के बीच में सदैव नम्रता का व्यवहार होना चाहिए; पर यदि किसी समय शिक्षक की ओर से कोई अनुचित कठोरता हो जाय तो कम से कम शिष्टाचार के अनुरोध ही से विद्यार्थी को वह व्यवहार सहन कर लेना चाहिए।

विद्यार्थी बार-बार कक्षा के बाहर न जावे। यदि विशेष आवश्यकता हो तो वह शिक्षक से अनुमति लेकर कुछ समय तक बाहर ही रहे। कार्य के समय बिना शिक्षक की अनुमति के बाहर से कक्षा के भीतर आना भी अशिष्टता है। पाठशाला में

आने के और घर जाने के समय शासन के अनुसार विद्यार्थियों को पाठक को प्रणाम करना चाहिए जिसका प्रेम-पूर्वक उत्तर देना पाठक का कर्त्तव्य है। पाठशाला के बाहर भेंट होने पर भी प्रणाम और उत्तर के नियम में बाधा न आनी चाहिए।

जो बातें विद्यार्थियों के विषय में कही गई हैं वही थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ शिक्षकों के विषय में भी कही जा सकती हैं। जहाँ तक हो सके शिक्षक को अपना पाठ पद्धति-पूर्वक और खड़े रहकर पढ़ाना चाहिए। पाठक लोग कभी-कभी कुरसी और मेज का सुभीता पाकर मेज पर पैर फैला देते हैं। यह अनुचित है। विद्यार्थियों के प्रश्न करने पर उन्हें उसका उत्तर शान्ति और प्रेम-पूर्वक देना चाहिए। शिक्षक को विद्यार्थियों के प्रति न तो पत्थर सा कड़ा और न मक्खन सा कोमल होना चाहिए, क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में मृदु-मति बालकों पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। उसे मध्यभाव से अपना व्यवहार करना चाहिए।

(२) भीड़-मेलों तथा रास्तों में

भीड़-मेलों में सेना के शासन के समान अथवा कल की एक-रूपता की तरह पूर्ण व्यवस्था कठिन है, क्योंकि सभी लोग सभी स्थानों में और सभी समय पर शिष्टाचार का विचार नहीं रख सकते। इसीलिए ऐसे अवसरों पर प्रबन्ध के लिए स्वयं-सेवकों और पुलिस की आवश्यकता होती है; तथापि लोगों की सदिच्छा और विवेकबुद्धि से बहुत-से अनुचित व्यवहार रोके जा सकते हैं।

भीड़-मेलों में स्त्रियाँ और पुरुष बहुधा अपने साथियों के साथ जाते हैं और जहाँ तक होता है प्रत्येक अपना साथ बनाये रखता है। ऐसी अवस्था में लोगों का यह कर्त्तव्य है कि वे

अपने साथ-वालों का ध्यान रक्खें। यदि कहीं कोई साथी छूट जाय तो दूसरे साथियों को उसे खोजना चाहिए अथवा उसके लिए ठहरना चाहिए। जहाँ सड़क चौड़ी हो वहाँ सड़क के किनारे से चलना ठीक है, जिसमें सवारियों के आने-जाने से कोई दुर्घटना होने का डर न रहे। झुंड-वाले लोग एक कतार में न चलें; किन्तु एक-दूसरे के आगे-पीछे, और बीच रास्ते में खड़े न रहें। प्रायः ऐसे ही नियम सवारियों के लिए भी हैं। इनका वेग नियमित होना चाहिए और इन्हें आने-जाने-वालों को सभ्यतापूर्वक् सचेत कर देना चाहिए। पैदलों और सवारों को एक दूसरे के सुभीते का ध्यान अवश्य रहे। इसी भाँति पुरुषों को स्त्रियों के तथा स्त्रियों को पुरुषों के सुभीते का ध्यान रखना चाहिए। जिस ओर से अधिकांश स्त्रियाँ जाती हों उस ओर से पुरुष न जावें। इसी तरह स्त्रियाँ भी पुरुषों के मार्ग से न चलें। स्त्रियों के मार्ग को रोक कर खड़े होना अथवा किसी पास के स्थान पर ठहरकर उनकी ओर टकटकी लगाकर देखना, ठट्ठा करना या अनुचित गीत गाना नीचता है। यदि किसी मेले के स्थान पर स्त्रियों और पुरुषों के ठहरने, नहाने आदि के लिए अलग-अलग स्थानों का प्रबन्ध हो तो प्रत्येक वर्ग को अपने ही निर्दिष्ट स्थान का उपयोग करना चाहिए। अधिक भीड़ होने पर भी स्त्रियों को हटाकर जाना पुरुषों के लिए उचित नहीं है। जिस धर्म के लोगों का मेला हो उनकी सम्मति के बिना अन्य धर्मवाले को उसमें, विशेषकर पूजा के स्थान और समय पर सम्मिलित न होना चाहिए।

यदि भीड़ में कोई बालक, स्त्री अथवा अशक्त मनुष्य किसी प्रकार के संकट में हो तो बलवान् और धनी लोगों को अपनी योग्यता के अनुसार उसकी सहायता करनी चाहिए। दर्शकगण और भक्त-जन भी मेलों और तमाशों में बहुधा स्वार्थ और

मनोरञ्जन के लिये जाते हैं, इसलिए उन्हें असहायों को सहायता देने का बहुत कम ध्यान होता है; परन्तु यथार्थ उपकार करने का अवसर ऐसे ही स्थानों में मिलता है। क्या ही अच्छा हो यदि कुछ उपकारी सज्जन मेलों में देवताओं और साधुओं के दर्शन करने के पश्चात् कुछ ऐसे असहाय लोगों के भी दर्शन करें, जिनका उस समय केवल ईश्वर ही रक्षक रहता है।

स्वयंसेवकों को भी अपने कर्त्तव्य का पूरा ध्यान रखना चाहिए। लोगों से सभ्यता-पूर्वक बातचीत करना और आवश्यकता पड़ने पर उनकी उचित सहायता करना प्रत्येक स्वयं-सेवक का कर्त्तव्य होना चाहिए। किसी का पक्षपात अथवा अपमान करना उसके लिए कलंक की बात है। स्वयंसेवक मन में यह धारणा न रखे कि मैं बिना वेतन के काम करता हूँ, इसलिए मुझे सब के साथ मनमाना व्यवहार करने की स्वतंत्रता अथवा योग्यता है। उसे अपने नाम "स्वयंसेवक" के अर्थ पर सदैव दृष्टि रखना चाहिए।

इसी सम्बन्ध में दो-चार शब्द पुलिस के लिए भी कह देना अनुचित न होगा। यद्यपि अनेक पुलिस-वाले अपने को विशेष अधिकारी समझने के कारण बहुधा शिष्टाचार का नाम तक नहीं जानते; तथापि मनुष्यता की दृष्टि से वे अपने अधिकार के उपयोग में भी शिष्टाचार का पालन कर सकते हैं। हिन्दुस्थान का एक मामूली कानिस्टबिल भी कोई बात पूछने पर बहुधा टर्राता है जिसका विशेष कारण अज्ञान और पराधीन प्रकृति है; पर विलायत की पुलिस के विषय में यह लिखा है कि वह नीच से नीच अभियुक्त के साथ भी अशिष्ट व्यवहार नहीं करती। पुलिस को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि नम्रता-पूर्वक किये गये प्रश्न का उत्तर नम्रता ही के साथ दिया जाना चाहिए। उसे लोगों की कठिनाइयों की ओर उन्हें

दूर करने के उपायों की खोज करनी चाहिए और जहाँ केवल उँगली उठाने से काम चल सकता है वहाँ लट्ठ न चलाना चाहिए। आनन्द की बात है कि कुछ दिनों से कहीं-कहीं पुलिस अपने को प्रजा का सेवक समझने लगी है।

(३) मन्दिरों में

ऊपर जो कुछ मेलों के विषय में कहा गया है उसका अधिकांश मन्दिरों में पाले जाने-वाले शिष्टाचार के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। कई लोग मन्दिरों में भक्ति के कारण नहीं; किन्तु लोक-लज्जा के वशी-भूत होकर जाते हैं। ऐसे लोगों को भी पूजा-स्थान में प्रचलित शिष्टाचार का पालन करना चाहिए। आते-जाते समय पुजारी को प्रणाम करना और उससे एक-दो बातें कर लेना शिष्टता के चिह्न हैं। देव-दर्शन के समय ऐसे स्थान में खड़े होना या बैठना चाहिए जिसमें पीछे-वाले व्यक्ति का दृष्टि-पथ न रुके। प्रार्थना इतने जोर से न की जावे कि दूसरे को किसी प्रकार की असुविधा हो। पूजा करने में इतना अधिक समय न लगाया जाय जिसमें दूसरों को पूजा का अवसर न मिले यदि पूजा के लिए स्त्रियाँ भी आई हों तो उन्हें इस काम के लिए पहले अवसर देना चाहिये। प्रार्थना और पूजा के आगे-पीछे तुरन्त ही संसारी काम-काज की बातें न छेड़नी चाहिए। जो मनुष्य किसी देवता के ध्यान में मग्न हो अथवा किसी मंत्र का पाठ कर रहा हो उसके पास ही जोर-से न बोलना चाहिए। मन्दिरों में जूते, छाता, छड़ी इत्यादि निर्दिष्ट स्थान में रक्खे जायँ।

यदि किसी भिन्न धर्म-वाले पूजा-स्थान में जाने का अवसर हो तो वहाँ उस धर्म के विरुद्ध एक भी शब्द न कहा जावे। वहाँ हमें उस धर्म के शिष्टाचार का भी पालन करना चाहिए। एक

बार लेखक को एक वल्लभ-संप्रदायी गोस्वामी के पास जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह उनके सामने पालथी मारकर बैठ गया। उसे यह ज्ञात न था कि इन लोगों के सामने इस प्रकार बैठना अशिष्ट समझा जाता है, इसलिए जब गोस्वामी महाराज के एक सेवक ने आकर उसके एक घुटने को अचानक उठा दिया तब उसे बड़ा आश्चर्य और खेद हुआ। साथ ही यह संकेत पाकर जब लेखक ने अपने आसपास बैठे लोगों की ओर देखा तब उसे उनकी बैठक से मालूम हुआ कि मुझे भी वैसे ही बैठना चाहिए था और उसने उसी समय अपना आसन बदल लिया। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि गोस्वामी जी के सेवक ने लेखक की अपेक्षा अधिक अशिष्टता कर डाली।

यदि किसी के पूजा-स्थान में कोई भिन्न धर्म-वाला व्यक्ति उचित कारण से आ पहुँचे तो उसे इसके साथ शिष्टता का व्यवहार करना चाहिए। यदि इस भिन्न-धर्मी व्यक्ति को आगे ऐसा न करने की सूचना देनी हो तो वह भी सभ्यता-पूर्वक दी जाय।

मन्दिर में जो स्त्रियाँ आवें उनकी ओर ताकना अनुचित है। यदि वे परिचित हों तो भी उनकी ओर दृष्टि-पात करना अथवा उनसे बातचीत करना हिन्दुस्थानी समाज में आजकल भी अनुचित समझा जाता है। यदि उस महिला-समाज में कुछ वयोवृद्ध स्त्रियाँ हों तो अवसर आने पर उनसे संक्षिप्त वार्तालाप करने में कोई हानि नहीं।

पुजारी अथवा महन्त को भी शिष्टाचार का पालन करना चाहिए। दर्शकों को अपनी अपेक्षा कम धार्म्मिक अथवा कर्म-कांडी समझकर उसे इनके प्रति तिरस्कार का भाव प्रकट करना

उचित नहीं। यदि दर्शक लोग उससे थोड़ी बहुत बातचीत करना भूल जावें तो उसे ही उनसे एक-दो बातें कर लेनी चाहिए जिसमें मन्दिर का दृश्य अदालत का दृश्य न हो जाय।

(४) भोजों में

भोजों में शिष्टाचार के अनेक अवसर उपस्थित होते हैं। इनमें देश, काल, पात्र और अवस्था का बहुत ध्यान रखना पड़ता है। भोजों की निर्विघ्न समाप्ति के लिए दूसरी तैयारियों के साथ-साथ पाहुने और प्रबन्धक, दोनों को शिष्टाचार का पालन करने की बड़ी आवश्यकता है।

जेवनार में निमंत्रित व्यक्ति को जाति-प्रथा के अनुसार उसी प्रकार का भोजन कराना चाहिए जो वह स्वीकृत करे। आजकल जहाँ एक ओर खान-पान की स्वतंत्रता—सहभोज्यता—दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर भिन्न-भिन्न जातियों के पुनर्संगठन के करण इसमें संकीर्णता भी आ गई है। उदाहरण के लिए, कई ब्राह्मणेतर जातियाँ जो किसी समय पूर्व परिचित ब्राह्मण के यहाँ कच्चा भोजन करती थीं वे आजकल बहुधा फलारी भोजन करने लगी हैं।

यदि किसी कारण से किसी व्यक्ति के विषय में यह सन्देह हो कि वह भोजन का नेवता स्वीकार करेगा या नहीं तो इस बात के निर्णय के लिए सब से अच्छा उपाय यही है कि निमंत्रण के पूर्व उसकी इच्छा का पता लगा लिया जाय। साधारणतया ऐसे व्यक्ति को निमंत्रित करना उचित नहीं है जो किसी कारण से निमंत्रण अथवा निमंत्रक के प्रति द्वेष प्रकट करता है। यदि किसी को किसी के यहाँ भोजन के लिए जाने में कोई आपत्ति हो तो उसे चाहिए कि वह शिष्टता-पूर्वक कोई उचित दीखने-वाली कठिनाई का कारण बताकर निमंत्रण अस्वीकृत कर दे; पर

निमंत्रण स्वीकार कर उसें अपने वचन का पालन अवश्य करना चाहिए। कम-से-कम उसे निमंत्रक के घर तक तो जाना ही चाहिए और यदि आवश्यक हो तो भोजन न करने का कारण अपनी कोई एक कठिनाई बताकर गृह-स्वामी से क्षमा मांग लेनी चाहिए। निमंत्रण स्वीकार कर अपने बदले में लड़कों को अथवा किसी निकट सम्बन्धी को भेजना बहुधा अनुचित नहीं माना जाता। जाति-सम्बन्धी भोजों में जिसको निमंत्रण दिया जाता है उसके यहां यदि कोई ऐसा आदमी ठहरा हो जिससे निमंत्रणकारी का परिचय अथवा सम्बन्ध है तो उसको भी निमंत्रण दिया जाय।

भोजन के लिए कम-से-कम दो बार बुलावा भेजना चाहिए—एक बार सूचना के रूप में और दूसरी बार जेवनार आरम्भ होने के पूर्व। यदि लिखा हुआ निमंत्रण दिया गया है तो दूसरा बुलावा भेजना आवश्यक नहीं है, क्योंकि निमंत्रण-पत्र में बहुधा समय और स्थान दिया रहता है।

समय का पालन खाने-वाले और खिलाने-वाले दोनों को करना चाहिए। ऐसा न हो कि नेवते-वालों को भोजन के लिए कई घंटों तक ठहरना पड़े अथवा किसी एक व्यक्ति के आगमन की प्रतीक्षा में समय पर पगंत ही न बैठ सके। दोनों ओर को अधिक-से-अधिक एक घंटे का समय दिया जा सकता है; पर जिन्हें कोई और आवश्यक कार्य करना है उनके भोजन का प्रबन्ध समय पर होना चाहिए। साधारण स्थिति के लोगों के प्रति पाहुनों को कुछ अधिक उदारता दिखानी चाहिए।

भोजन में बैठक का क्रम निश्चित करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। यदि किसी विशेष व्यक्ति के उपलक्ष्य में भोज दिया गया है, जैसे बरात में दूल्हे के अथवा विदाई में किसी पाहुने के, तो उसे प्रमुख स्थान दिया जावे। उसके पास

ही वे लोग बैठाये जायँ जो उसके निकट-सम्बन्धी अथवा गाढ़े मित्र हों। यदि जाति-सम्बन्धी भोज हो तो जाति के मुखियों और मान्य लोगों को पांत में आरंभीय स्थान दिया जाना चाहिए। जहाँ इन सब बातों का विचार नहीं है और जाति-पाँति का बखेड़ा नहीं है वहाँ प्रमुख ठौर पर ज्ञान-वृद्ध, वयो-वृद्ध तथा प्रतिष्ठित लोगों को बिठाना चाहिए। बैठक के क्रम का बहुत ही सूक्ष्म निर्णय नहीं हो सकता; तथापि जहाँ तक हो इस बात का विचार रखना चाहिए कि किसी का किसी प्रकार अपमान न हो। यदि किसी को किसी के पास बैठकर भोजन करने में आपत्ति हो (पर गृह-स्वामी के मान के विचार से ऐसा होना न चाहिए), तो प्रबन्धक का कर्त्तव्य है कि वह उसे किसी और उचित स्थान पर बैठाले अथवा उसके लिए पास ही किसी अलग और उपयुक्त स्थान का प्रबन्ध कर दे।

पाहुनों के लिए जो स्थान चुना जावे वह जहाँ तक हो स्वच्छ तथा दुर्गन्ध से मुक्त हो। हम लोगों के आँगनों के आसपास ही बहुधा निस्तार की जगहें रहती हैं जिनके पास दुर्गंध निकलती है। भोजन का स्थान ऐसी जगहों से इतनी दूर हो कि वहाँ दुर्गन्ध न पहुँचे। जिन घरों में अन्य उपयुक्त स्थान हों उनमें दुर्गन्धमय स्थानों के आसपास की जगह भी काम में न लाई जावे। यदि निमंत्रित व्यक्तियों की संख्या स्थान के मान से अधिक है (बहुधा लोग अपनी प्रतिष्ठा के लिए अथवा विवश होकर अनेक लोगों को निमंत्रित करते हैं), तो उनको दो टोलियाँ करके उन्हें अलग-अलग दो पंगतों में खिलाना उचित होगा। एक पंगत के उठ जाने पर स्थान फिर से साफ किया जाय। भोजन-स्थान में जहाँ-तहाँ धूपबत्तियाँ जलाई जाँय और वहाँ से अनावश्यक कपड़े-लत्ते, बासन-बर्त्तन आदि सब हटा लिये जायँ।

भोजन और पात्रावली की स्वच्छता पर भी विशेष ध्यान दिया जाय। किसी भी प्रकार की और किसी भी वस्तु की अस्वच्छता से अमृत-रूपी व्यञ्जन भी विष-मय हो सकता है और उसे खाने-वालों के जी बिगड़ जा सकते हैं। किसी-किसी भोज में तो यहाँ तक देखा और सुना गया है कि भोजन के पश्चात् ही अधिकांश लोग बीमार हो गये और कई-एकों को प्राण तक दे देने पड़े।

पंक्ति में बैठकर अपने साथियों की अपेक्षा जल्दी भोजन समाप्त कर लेना अनुचित और अशिष्ट है। यदि किसी का आहार दूसरों से कम है और यह बात स्वाभाविक है, तो उसे धीरे-धीरे (थोड़ा-थोड़ा) भोजन करना चाहिए।

भोजन करने-वालों को इस बात का भी ध्यान रखना उचित है कि पत्तल में न तो बहुत-सी सामग्री छोड़ना चाहिए और न पत्तल को बिलकुल खाली रखना चाहिए। पर ये बातें अधिकांश में परोसने-वालों की चतुराई पर निर्भर हैं।

परोसने में साधारण से कुछ अधिक आग्रह की आवश्यकता अवश्य है; पर ऐसा कभी न होना चाहिए कि अनेक बार नाहीं करने पर भी किसी के आगे बहुत-सी सामग्री पटक दी जाय। इससे भोजन करने-वाले को प्रसन्नता के बदले संकोच और खेद होता है और साथ ही बहुत-सी सामग्री व्यर्थ जाती है।

भोजन के उपरान्त पाहुनों को गृह-स्वामी के यहाँ कुछ समय तक बैठना चाहिए और उस समय गृह-स्वामी को पान-सुपारी से उनका आदर करना चाहिए। फिर उन्हें चुने हुए शब्दों में गृह-स्वामी के प्रबन्ध की प्रशंसा करके तथा उसकी कठिनाइयों के प्रति समवेदना प्रकट करके उससे विदा लेनी चाहिए।

(५) उत्सवों में

उत्सव दो प्रकार के होते हैं—(१) घर-सम्बन्धी (२) जाति-सम्बन्धी। पुत्र-जन्म, विवाह आदि पहले प्रकार के उत्सव हैं और दशहरा, फाग, रामनवमी आदि दूसरे प्रकार के हैं। पहले प्रकार के उत्सवों में गृही का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि वह पाहुनों के निवास, भोजन आदि का उचित प्रबन्ध करने में कोई बात उठा न रक्खे। इधर पाहुनों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे घर-वाले के ऊपर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यर्थ दबाव न डालें। घरू उत्सवों में जिस आग्रह से निमंत्रण दिया जाय उसीके अनुसार उसका पालन किया जाना चाहिए। यदि निमंत्रण केवल शिष्टाचार की दृष्टि से दिया गया है तो उसका पालन भी उसी दृष्टि से किया जावे। ऐसी अवस्था में केवल उत्सव-सम्बन्धी व्यवहार ही भेज देने की आवश्यकता है, उसमें पाहुना बनकर सम्मिलित होने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय में कोई-कोई गृह-स्वामी यहाँ तक चालाकी करते हैं कि व्यवहारियों को बहुत पीछे निमंत्रण देते हैं जिसमें वे उत्सव में सम्मिलित न हो सकें और साथ ही यह भी न कह सकें कि हमें निमंत्रण नहीं मिला। इस प्रकार के निमंत्रण को कोई मान नहीं दिया जा सकता। हाँ, शिष्टाचार की दृष्टि से लोग उसका यही उत्तर दे सकते हैं कि किसी अड़चन के कारण हम उत्सव में शामिल नहीं हो सकते।

विवाह के उत्सव में बहुधा बीच-वालों के कारण समधियों में अनबन हो जाती है। कभी-कभी तो यथार्थ अथवा कल्पित मान-रक्षा के प्रयत्न में पूर्वोक्त दोनों सज्जनों की भूलों ही से बखेड़े खड़े हो जाते हैं और इनके कारण पाहुनों को व्यर्थ ही शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है। उन्हें बहुधा समय पर भोजन

नहीं मिलता और कभी-कभी अपमान भी सहना पड़ता है। यद्यपि ये बातें बहुधा अशिक्षा और दुराग्रह के कारण उत्पन्न होती हैं, तथापि कई एक शिक्षित और प्रतिष्ठित सज्जन भी अपनी विद्वत्ता और प्रतिष्ठा का प्रदर्शन करने के लिए विवाहादि उत्सवों में छोटी-छोटी बातों पर ही विघ्न खड़ा कर देते हैं। ये लोग शिष्टाचार का यहाँ तक उल्लंघन कर बैठते हैं कि किसी ऐसे सज्जन को जिससे वे अपने किसी निज कारण से अप्रसन्न रहते हैं कोई न कोई बहाना ढूँढकर दूसरे के उत्सव से हटवाने का प्रयत्न करते हैं। यदि हो सके तो ऐसे उपद्रवी लोगों से उत्सव को पवित्र और मुक्त ही रखना चाहिए, चाहे वे लोग बहिष्कृत होने पर बाहर से अपनी दुष्टता भले ही करते रहें।

बरातों में बहुधा झगड़े हो जाते हैं। जाति-सम्बन्धी अन्यान्य कारणों के साथ-साथ बरात-वालों की उद्दंडता और स्वागत-कारियों की कृपणता अथवा वचनभंग से भी ये झगड़े उत्पन्न होते हैं। कोई-कोई लड़की-वाले बहुधा ऊपरी दिखावे के कामों में बहुत-सा अपव्यय कर डालते हैं; पर बरात के निवास और भोजनादि का उचित प्रबन्ध करना अनावश्यक समझते हैं। इधर बरात-वाले लड़की-वाले की प्रवृत्ति देखकर उसे आवश्यकता से अधिक दबाते हैं और दोनों अवस्थाओं का परिणाम बहुधा शोचनीय हो जाता है। नाई-ढीमरों के जासूसी समाचारों से भी कभी-कभी बड़े अनर्थ हो जाते हैं; इसलिए इनकी गवाही बड़ी सावधानी से स्वीकृत की जानी चाहिए। दोनों पक्ष-वालों को इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी एक के कारण दूसरे को व्यर्थ ही खरचे में न पड़ना पड़े, और किसी प्रकार का अपमान न सहना पड़े। हर्ष का विषय है कि शिक्षित समाजों में इन विवादों के अवसर धीरे-धीरे कम होते जाते हैं।

विवाहों में अश्लील गीतों और चालों का प्रचार रोकने की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि इन बातों से केवल झगड़े ही नहीं बढ़ते; किन्तु जाति के लोगों पर, विशेष कर नई वय-वालों पर, बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। साथ ही अन्यान्य जातियों के आगे जिनमें ये कुरीतियाँ नहीं हैं अथवा जिन्होंने अपनी शिक्षा से इनकी बहिष्कार कर दिया है इन बातों की समर्थक जाति हीन और घृणित समझी जाती है।

जो लोग उत्सवों में भाग लेते हैं उनकी विदा आदर-पूर्वक की जावे। पाहुने की योग्यता और जाति-सम्बन्ध के अनुसार उसे भेंट दी जावे और दो-चार चुने शब्दों में उससे त्रुटियों के लिए क्षमा माँगी जावे। पाहुने के साथ कुछ दूर तक जाना भी आवश्यक है। सार यह है कि पाहुनों का यथोचित आदर करने में कोई बात उठा न रक्खी जावे।

ऊपर जो बातें विवाहोत्सव के प्रसंग से कही गई हैं वही थोड़े हेरफेर से अन्यान्य घरू उत्सवों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती हैं। इन सब अवसरों पर उसी उपयोगी नियम का पालन करना चाहिए जिसका उल्लेख पुस्तक के आरम्भ में किया गया है, अर्थात् मनुष्य दूसरे के साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसा वह दूसरे से अपने साथ कराना चाहता है।

जिस घर-सम्बन्धी उत्सवों में केवल स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं, जैसे सुहागिलों आदि में, उनमें शिष्टाचार का उत्तरदायित्व स्त्रियों पर ही है। स्त्रियों में आत्म-प्रशंसा की प्रवृत्ति बहुधा पुरुषों की अपेक्षा कुछ अधिक रहती है, इसलिए उन्हें इस प्रवृत्ति को कम करना चाहिए। सदा अपने ही विषय की अथवा अपनी वस्तुओं (गहनों, वस्त्रों आदि) की चर्चा करना शिष्टता के विरुद्ध है। पुरुषों के समान स्त्रियों को भी अपनी पाहुनियों का

आदर-सत्कार करने में कमी न करनी चाहिए और जहां तक हो सभी स्त्रियों के साथ एक-सा बर्ताव करना आवश्यक है। विधवाओं और वृद्धाओं के प्रति विशेष आदर-भाव व्यक्त करने की आवश्यकता है। यथा-सम्भव चापलूसी करने का कोई अवसर न लाया जाय। बात-बात में हँसी करने अथवा अपशब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति को भी रोकने की आवश्यकता है। स्त्रियों को ऐसी स्त्रियों के साथ व्यवहार न बढ़ाना चाहिए जिनकी संगति को चार जने दूषित समझते हैं।

आदर-सत्कार में प्रथमता का निर्णय बहुधा पात्र की आयु के अनुसार किया जाय, जिसमें किसी को अप्रसन्न होने अथवा आक्षेप करने का अवसर न मिले।

जाति-सम्बन्धी उत्सवों में परस्पर व्यवहार पालने की बड़ी आवश्यकता है। इन अवसरों पर हमें केवल जाति-वालों ही के यहां नहीं, किन्तु अन्य जाति-वाले मित्रों के यहाँ भी आना-जाना चाहिए। जिन उत्सवों में सार्वजनिक सभा करने की प्रथा है उनमें हमें उस सभा में सम्मिलित होना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो एक-दूसरे के यहां जाकर भेंट-व्यवहार करना चाहिए। खेद है कि हिन्दुओं में और विशेषकर हिन्दुस्थानी लोगों में जाति-सम्बन्धी अथवा सामाजिक उत्सव भी बहुधा घरू उत्सवों का रूप धारण करते हैं जिससे रामनवमी सरीखे महत्व-पूर्ण और धार्मिक उत्सव में भी न लोग एक दूसरे से मिलते हैं और न कोई सार्वजनिक सभा ही होती है। इस उदासीनता का यह परिणाम होता है कि हिन्दुओं के अनेक महत्त्व-पूर्ण सामाजिक उत्सव जाने भी नहीं जाते और जाति में एकता तथा दूसरे उच्च भाव उत्पन्न करने का साधन सहज ही हाथ से निकल जाता है। स्थानाभाव से हम यहाँ अन्यान्य जातीय उत्सवों के विषय में कुछ न कहकर केवल

दशहरे के उत्सव से सम्बन्ध रखने-वाले शिष्टाचार की कुछ बातें लिखते हैं।

दशहरे के दिन, राम के रावण को जीतने के उपलक्ष्य में, हिन्दू लोग आनन्द मनाते हैं। इस दिन हिन्दुस्थानी लोग अपने मित्रों, व्यवहारियों तथा जाति-वालों के यहाँ दशहरे का पान खाने के लिए जाते हैं और भेंट में उन्हें 'सोना' (शमी-पत्र) देते हैं। इस अवसर पर लोग बहुधा उन लोगों के यहाँ भी जाते हैं जिनसे वर्ष के भीतर कभी लड़ाई-झगड़ा हो गया हो—अर्थात् इस महोत्सव के उपलक्ष्य में लोग आपसी द्वेष भूल जाते हैं। ऐसा करना सामाजिक उत्कर्ष के लिए बहुत आवश्यक है। दशहरे की भेंट के समय छोटे बड़ों का चरण-स्पर्श अथवा उनको प्रणाम करते हैं। गृह-स्वामी आगत सज्जनों का पान आदि से उचित आदर करते हैं। यदि समयाभाव या और किसी अड़चन से कोई किसी के यहाँ दशहरे के दिन नहीं जा सकता तो वह दूसरे दिन जाता है। कोई-कोई बड़े लोग दूसरों के यहाँ नहीं जाते; पर उनका यह आचरण अनुकरणीय नहीं है और दूसरे लोग भी असन्तोष के कारण उनके यहाँ जाना बन्द कर देते हैं।

दशहरे के दिन संध्या के समय लोग अच्छे कपड़े पहिनकर नीलकंठ के दर्शनों के लिए बस्ती से बाहर जाते हैं और वहीं से शमी-पत्र लाते हैं। कई लोग नगर के बाहर कभी-कभी ऐसे लोगों से अपना व्यवहार निबटा लेते हैं जिनसे साधारण परिचय रहता है और जिनके यहाँ उन्हें जाने का सुभीता नहीं होता।

यद्यपि यह महोत्सव सामाजिक, धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी भारतवर्ष और हिन्दू जाति के लिए बड़े महत्व का है, तथापि रजवाड़ों को छोड़ अन्य स्थानों में इसका पालन

बहुधा उदासीनता के साथ होता है। यदि हमलोग चाहें तो इस अवसर को उसी प्रकार "जातीय" बना सकते हैं जिस प्रकार "ईद" और "बड़ा दिन" बनाये जाते हैं।

राजाश्रय प्राप्त होने के कारण रजवाड़ों में यह तेवहार बड़ी धूमधाम से होता है। वहाँ इसका पालन नियम-पूर्वक होता है जिससे लोगों के नेत्रों के आगे प्राचीन दृश्य एक बार फिर झूलने लगता है। इस उत्सव से सम्बन्ध रखने-वाले शिष्टाचार का पालन रजवाड़ों में बड़ी सावधानी से किया जाता है। स्थानाभाव से रजवाड़ों के इस उत्सव का ब्योरेवार वर्णन करना कठिन है; तथापि इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अमर्यादित होने पर भी रजवाड़ों का शिष्टाचार अन्य स्थान के लोगों के लिए अनुकरण का विषय है। यदि हमारे हिन्दू राजा-महाराजा अधिक कर्त्तव्य-शील, सदाचारी और वास्तविक शिष्टाचार के अनुरागी हो जायँ, तो हमारी सामाजिक अवस्था भी अनुकरणीय हो जाय।

(६) व्यवसाय

व्यवसाय में शिष्टाचार के यथोचित पालन से अनेक लाभ हैं। इससे ग्राहक और परिचय-वाले ही प्रसन्न नहीं होते; किन्तु व्यवसायी की साख और आय भी बढ़ती है। जो व्यापारी उदासीनता से अथवा अहंभाव से किसी ग्राहक के साथ रूखा अथवा असभ्य व्यवहार करता है उसके यहाँ लोग केवल विवशता के समय जाते हैं। रूखे दूकानदार को उचित मूल्य देना भी ग्राहक को भारी जान पड़ता है; पर शिष्टाचारी व्यापारी को कुछ अधिक देना भी नहीं अखरता।

व्यवसायी के शिष्टाचार में यथासंभव सत्य-भाषण भी सम्मिलित है। यह गुण उसमें विशेष कर इसलिए आवश्यक है जिसमें

ग्राहकों का विश्वास उस पर बना रहे और वे उसे सभ्य और सज्जन समझें। झूठ बोलना केवल सदाचार ही के विरुद्ध नहीं है; किन्तु शिष्टाचार के भी विपरीत है और व्यवसाय में तो उसके द्वारा, परोक्ष-रूप से, बड़ी हानि होती है।

व्यवसायी को उचित है कि वह ग्राहक की स्थिति, शिक्षा, वय आदि का विचार कर उसे आवश्यक वस्तुएँ दिखाने में आगा-पीछा न करे। वह उसके प्रश्नों का उत्तर पूर्णतया और सभ्यतापूर्वक देवे तथा कार्य में किसी प्रकार अपनी अड़चन अथवा अधीरता न प्रकट होने दे। जल्दी-जल्दी विविध प्रकार की अथवा आवश्यकता से अधिक मूल्य की वस्तुएँ दिखाकर उसे ग्राहक को संकोच में न डालना चाहिए। साथ ही वह अपनी वस्तु की मिथ्या प्रशंसा न करे और न उसके दूने-चौगुने दाम बतलावे। व्यापार में धोखा देना (जो यथार्थ में एक प्रकार का असत्य-भाषण है) अशिष्ट समझा जाता है। शहरों के चालाक व्यापारी बहुधा अपढ़ ग्रामीण ग्राहकों को ठगने का प्रयत्न किया करते हैं; पर यह रीति परम निंदनीय है। वस्तुओं की नापतौल में भी कमी न की जावे; वरन निश्चित परिमाण से कुछ अधिक दे दिया जावे।

इधर ग्राहक को भी उचित है कि वह ऐसी वस्तुएँ देखने की इच्छा न करे जो उसे लेना नहीं है अथवा जिनका मूल्य उसकी शक्ति के बाहर है। किसी वस्तु को देखते समय उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह जाँच के कारण बिगड़ न जाय और व्यापारी की कोई हानि न हो। यदि ग्राहक बहुत समय तक अनेक प्रकार की वस्तुएँ देखकर भी कोई वस्तु मोल लेने का निश्चय न कर सके तो उसे उचित है कि वह अत्यन्त साधारण मूल्य की कोई वस्तु अवश्य मोल लेवे

जिसमें व्यापारी का कुछ समाधान हो जाय और ग्राहक अशिष्टता के अपराध से बच जाय।

व्यापारी और ग्राहक को लेन-देन के समय इतने धीरज और गौरव के साथ परस्पर बर्ताव करना चाहिए जिसमें किसी ओर से भी कड़ी बातचीत अथवा अनुचित क्रिया करने का अवसर न आवे। मिथ्याभिमान अथवा कोरी ऐंठ की प्रवृत्ति से दोनों की हानि होने की संभावना रहती है।

(७) वेश-भूषा में

आजकल जब कोट, टोप, कालर, नेकटाई और अर्द्ध-पतलून का साम्राज्य है तब किसी को यह बतलाना प्रायः व्यर्थ ही है कि उसे अपने देश, काल और पात्र के अनुसार कपड़े पहिनना चाहिए। इन दिनों सर्वसाधारण की और विशेषकर सरकारी नौकरों की यह धारणा-सी है कि प्रतिष्ठा और पद की प्राप्ति अँगरेजी पोशाक पर निर्भर है। यह धारणा मिथ्या नहीं है, क्योंकि उच्च सरकारी नौकरी के लिए विदेशी पोशाक बहुधा एक आवश्यक गुण माना जाता है और कई लोग तो कदाचित् पोशाक की प्रभुता ही से प्रतिष्ठित पदों पर स्थापित हो गये हैं। प्रायः ऐसे ही कई कारणों से देशी लोग भी अपने देशी पहिनावे का विशेष आदर नहीं करते। यद्यपि मनुष्य की योग्यता बहुधा पोशाक से जानी जाती है; तथापि उसके लिए विलायती पोशाक पहिनना अनिवार्य नहीं है। आज भी हिन्दुस्थानी समाज में आधे से अधिक लोग अपना पहिनावा पहिनते हैं, चाहे वह नगर का हो अथवा ग्राम का। श्रीमान् मालवीय जी सदृश सज्जन आज भी अपनी पोशाक पहिनकर उच्च प्रतिष्ठा और पद के पात्र हैं।

अंगरेजी पोशाक का प्रचार प्रायः सर्वत्र बढ़ रहा है। ऐसी

अवस्था में जिन हिन्दुस्थानी लोगों ने इस विदेशी पहिनावे को ग्रहण कर लिया है, उनसे उसे छुड़वाना साध्य नहीं है; तथापि इतना अवश्य हो सकता है कि वे इस पोशाक के साथ भी अपनी जातीयता का कोई चिह्न सुरक्षित रख सकते हैं। नेकटाई अंगरेजों का निजी धार्मिक चिह्न है जिससे ईसा मसीह के क्रूस का बोध होता है, अतएव हिन्दुस्थानी हिन्दुओं को उसे त्याग देना चाहिए। उसके त्याग देने से उनके वेतन में संभवतः कोई कमी न होगी और न वे ऊँचे पद से वञ्चित रक्खे जायँगे। साथ ही वे समय पड़ने पर, अंगरेजों और ईसाइयों से, जिनमें नेकटाई का विशेष प्रचार है अलग समझे जा सकेंगे। पराधीनावस्था में भी कुछ स्वाधीनता रख लेना गौरव का चिह्न है। नेकटाई के सिवा उन्हें टोप लगाना भी छोड़ देना चाहिए। उसके बदले साफ़ा बांधने अथवा टोपी लगाने से वे अपनी जातीयता का कम-से-कम एक चिह्न स्थिर रख सकेंगे। लाला लाजपतराय सरीखे सज्जनों को उनके साफ़े ही के कारण हम लोग "अपना" समझ सकते हैं। ऐसे स्थान में पहुँचने पर जहां हमारा कोई न हो, हम केवल अपनी भाषा सुनकर और अपना भेष देखकर ही कुछ ढाढ़स प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमें वहां इन दोनों चिह्नों में से एक ही चिह्न मिल जाये तो भी हमारे प्रबोध की सीमा न रहे। अतएव जातीयता और जाति-प्रेम की दृष्टि से हैट और नेकटाई धारण करने-वाले हिन्दुस्थानियों का यह प्रधान कर्त्तव्य है कि वे अपनी वेश-भूषा में उनके बदले अपने एक दो चिह्न अवश्य रक्खें।

धार्मिक और सामाजिक उत्सवों में हम लोगों को अपना ही पहिनावा पहिनना चाहिए। यदि कोई हिन्दुस्थानी हाफ़-पेंट पहिनकर मंदिर में पूजा करेगा अथवा विवाह में कन्यादान देगा तो लोग उसकी दासता को धिक्कारेंगे और उसके स्वाँग पर

तालियाँ पीटेंगे। घर में भी हमें बहुधा अपनी पोशाक में रहना चाहिए।

आजकल बंगालियों का अनुकरण कर हमलोगों में से कई-एकों ने खुले सिर रहना स्वीकार कर लिया है; पर हिन्दुस्थानी समाज में यह रीति अशिष्ट और अशुभ समझी जाती है। घर से थोड़ी दूर तक इस अवस्था में जाने से विशेष हानि नहीं है; पर बाजारों में अथवा दूसरे मुहल्लों में इस तरह फिरना या जाना अनुचित है। बड़ी अवस्था के लोगों को केवल कुरता पहिनकर जाना भी योग्य नहीं है।

जहाँ तक हो सके पोशाक देशी कपड़े की हो। आजकल विदेशी कपड़े का व्यवहार शिष्टाचार के विरुद्ध समझा जाता है। यदि देशी सूत का कपड़ा न मिले तो कम-से-कम देशी पुतली-घरों का कपड़ा काम में लाया जाय। देशी पोशाक के समान, धार्म्मिक और सामाजिक कृत्यों में देशी कपड़े का उपयोग आवश्यक और उचित है।

कपड़ों की बनावट देश-चाल के अनुसार और उपयुक्त हो; पर उसमें वेल-बूटे आदि न रहें। चमकीले तथा भड़कीले कपड़ों का उपयोग बहुत कम किया जाय। रंगों की चुनाई में भी ध्यान रखना चाहिए कि वे गहरे न हों। मूल रंगों की गहराई और भी वर्जनीय है।

कपड़ों के उपयोग में उपयोगिता और शोभा का ध्यान तो रहता ही है; पर इस बात का भी विचार रखना चाहिए कि शरीर के आवश्यक अंग ढँके रहें।

पात्र की अवस्था के अनुसार पोशाक होनी चाहिए। कोई-कोई बूढ़े लोग तरुण पुरुषों के से सटे हुए और कोई-कोई तरुण पुरुष बूढ़े लोगों अथवा बालकों के से ढीले कपड़े पहनते हैं। ऐसा

पहनावा भद्देस दिखाई देता है। साधारण स्थिति के लोगों को धनाढ्यों अथवा उच्च पदाधिकारियों के समान पोशाक पहनना उचित नहीं। एक बार कचहरी में एक महाशय ऊँचे दरजे की पोशाक पहनकर एक नये आये हुए न्यायाधीश से मिलने गये। न्यायाधीश ने उनसे हाथ मिलाया और उन्हें अपनी बराबरी से कुरसी देकर उनका उचित सत्कार किया। पीछे जब न्यायाधीश को यह मालूम हुआ कि सत्कृत सज्जन केवल दफ़्तरी हैं तब उन्हें इनको अपनी अदालत से दूसरी जगह बदलवा देना पड़ा।

बाजारी लोगों और गुण्डों की एक प्रकार की विशेष पोशाक होती है जिससे वे तुरन्त पहचान लिए जाते हैं। इस प्रकार के परिधान से प्रत्येक शिक्षित और सभ्य व्यक्ति को बचना चाहिए। यह वेश-भूषा निन्दनीय समझी जाती है और इसे धारण करने-वाले व्यक्ति की ओर से लोगों की श्रद्धा हट जाती है।

कई सरकारी विभागों में कर्मचारियों की एक विशेष रूप की पोशाक रहती है जिसे 'वर्दी' या 'ड्रेस' कहते हैं। इस पोशाक के अधिकारियों को निजी कामों और अवसरों पर अपनी जाति-सम्बन्धी पोशाक पहिनना चाहिए। इस वेशभूषा का अनुकरण केवल शिष्टाचार ही की दृष्टि से नहीं; किन्तु कानूनी दृष्टि से भी औरों के लिये वर्ज्य है।

वस्त्रों की उपयुक्तता जितनी आवश्यक है उतनी ही उनकी स्वच्छता प्रार्थनीय है। बहुमूल्य वस्त्र भी स्वच्छता के अभाव में शोभा की सामग्री नहीं हो सकते। केवल स्वास्थ्य ही की दृष्टि से नहीं; किन्तु शिष्टाचार की दृष्टि से भी स्वच्छ वस्त्र धारण करना कर्त्तव्य है। मैले वस्त्र पहिनना धार्मिक दृष्टि से भी निन्द-नीय है, क्योंकि वे अशुभ समझे जाते हैं।

जिन्हें सामर्थ्य हो उन्हें कम-से-कम चार जोड़ी कपड़े अवश्य रखना चाहिए जिसमें वे उन्हें प्रति-सप्ताह बदल सकें। एक ही जोड़ी कपड़े को बार-बार धुलाकर पहनना दरिद्रता का सूचक है। जो लोग दिन में चार वार कपड़े बदलते हैं वे तो शिष्टाचार को पराकाष्ठा तक पहुँचा देते हैं; पर जो सज्जन एक ही कपड़े को महीनों पहिने रहते हैं वे शिष्टाचार को बढ़ने ही नहीं देते। विशेष अवसरों पर विशेष प्रकार की पोशाक पहिनना शिष्ट समझा जाता है। यदि इस समय लोग प्रतिदिन की पोशाक पहिनते हैं तो दूसरों को इस बात से असन्तोष होता है। विशेष आदरणीय स्थान में अथवा विशेष आदरणीय पुरुष के पास साधारण परि-धान में जाना उस स्थान और पुरुष का निरादर करना है।

पोशाक में असंगति न होनी चाहिए। धोती पहिनकर टोप लगाना अथवा कोट-पतलून पर अलवान ओढ़ना असंगत है। इसी प्रकार अँगरखे के साथ पतलून शोभा नहीं देती। साहबी पोशाक के साथ दिल्ली के पतले जूते भी अच्छे नहीं लगते। कोई-कोई लोग दोनों पक्षों का समर्थन करते हुए धोती के ऊपर पतलून पहनते हैं और पीछे एक पोटली सी बाँधे फिरते हैं। यह रीति अशिष्ट समझी जाती है। मोजों के बिना पतलून के साथ जूते भी शोभा नहीं देते। इसी भाँति अन्यान्य बेमेल पहिनावे भी शिष्टाचार के विरुद्ध समझे जाते हैं। कोई-कोई साहबी पोशाक के प्रेमी सज्जन दिन ही को नाइट-केप (रात की टोपी) लगाकर असंगति का परिचय देते हैं।

कपड़ों के साथ-साथ केश-कलाप का प्रश्न भी विचार के योग्य है। आजकल प्रायः सर्वत्र अंगरेजों के अनुकरण पर छोटे बाल रखने की प्रथा प्रचलित है। ऐसी अवस्था में पुराने समय के नमूने के बड़े-बड़े बाल रखना भदेस समझा जाता है। हाँ, जो लोग धर्म की प्रेरणा से डाढ़ी, मूँछ और सिर के बाल कटाना

अनुचित समझते हैं उनके केश-कलाप का कोई नाम नहीं रखता, जो हो, बालों के रखने में संगति अवश्य होनी चाहिए। ऐसा न हो कि सिर पर एक भी बाल न रहे और डाढ़ी लम्बी फहरावे अथवा सामने घोंसले के समान बड़े-बड़े बाल रखकर सिर के शेष भाग में बारीक बाल रखे जावें। पिछले प्रकार के बालों का प्रचार नीच जातियों में देखा जाता है। लोग मूँछों के साथ भी बहुधा अन्याय करते हैं। अंगरेज़ी चाल के अनुकरण पर कई लोग आधी-आधी मूँछें रख लेते हैं। इस फैशन से केवल जातीय चिह्न ही नष्ट नहीं होता; किन्तु चेहरे के रूप में कुरूपता भी आ जाती है। कई-एक सज्जन मूँछों को ऊपर नीचे से बनवाकर उन्हें एक विन्दु में मिलने-वाली दो पतली रेखाओं का रूप दे देते हैं। यह भी देखने में अच्छा नहीं लगता। जिन लोगों में मूँछें मुड़वाने की चाल नहीं है वे भी कभी-कभी उन्हें बोझ समझकर अथवा स्वयं विद्वान् समझे जाने की दृष्टि से उन्हें मुँड़वा डालते हैं। ऐसा करना ठीक नहीं समझा जाता। मूँछें पुरुषत्व का चिह्न है, इसलिये इन्हें सरलता से निकाल देना मानो अपने-आप पुरुषत्व का रूप नष्ट करना है। यह बात सन्यासियों के लिए लागू नहीं हो सकती जो धर्मानुसार भौंहों को छोड़कर सिर और मुख पर बाल नहीं रह सकते। सिर के कुछ भाग में बाल रखना और अन्य भाग में बिलकुल बनवा देना भी अशिष्टता का चिह्न है। हिन्दुओं को फैशन के फेर में पड़कर अपनी चोटी न कटा देना चाहिए क्योंकि यही एक ऐसा चिह्न है जिससे हिन्दू की पहिचान सरलता-पूर्वक हो सकती है। जातीय झगड़ों में शिखा-नष्ट लोगों की बड़ी दुर्दशा होती है और वे अपने समाज से भी तिरस्कृत किये जाते हैं।

सारांश यह है कि परिधान और केश-कलाप में अनुचित नवीनता अथवा विचित्रता का समावेश न किया जावे।

(८) प्रवास में

प्रवास मनुष्य की शिक्षा का एक अंग है; इसलिये उसे देश-देशान्तरों में अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रवास अवश्य करना चाहिए, चाहे वह शिक्षित हो, चाहे अशिक्षित। ऐसा सभ्य समाज में जहाँ देश-विदेश की चर्चा होती है, उस मनुष्य के मत का बहुत कम मान होता है, जिसने थोड़ा बहुत प्रवास नहीं किया। आजकल प्रवास के साधनों की बहुतायत होने से शिक्षित मनुष्यों में कोई बिरला ही होगा जो अपने गाँव या शहर से बाहर न गया हो।

प्रवास में या तो पूर्व प्रबन्ध से अथवा दैवयोग से कुछ लोगों का साथ हो जाता है और कभी-कभी यह संगति मित्रता का रूप धारण कर लेती है। प्रवास के समय इन साथियों से हमारा व्यवहार इस प्रकार का होना चाहिये कि उन्हें हमारी ओर से कोई कष्ट न पहुँचे और यदि हो सके तो हमसे उन्हें उचित सहायता प्राप्त हो। इस सद्-व्यवहार के बदले बहुत संभव है कि हमारे वे साथी हमसे भी वैसे ही सभ्यता का व्यवहार करेंगे।

प्रवासी मनुष्य को अपने साथ इतना रुपया, भोजन-सामग्री और कपड़े-लत्ते रखना चाहिए जिसमें वह किसी वस्तु के लिए दूसरों का आश्रित (मुहताज) न हो। यद्यपि प्रवास में कभी-कभी दूसरों से कोई-एक आवश्यक-वस्तु माँगने का प्रयोजन पड़ जाता है, तथापि किसी से कोई वस्तु बार-बार अथवा कई वस्तुएँ माँगना निन्दनीय समझा जाता है। अपने साथियों से बातचीत करते समय मुँह से ऐसी कोई बात न निकाली जावे जिससे उन्हें खेद हो अथवा आपस में झगड़े का अवसर उपस्थित हो जाय। यद्यपि प्रत्येक प्रवासी को अपने और अपने साथियों के लेन-देन का ठीक लेखा रखना उचित है; तथापि उन्हें एक-दूसरे

के लिए थोड़ी-बहुत आर्थिक हानि सहने का धीरज होना चाहिए।

यदि हमारा कोई प्रवासी भाई किसी जगह अचानक बीमार हो जाय अथवा किसी विपत्ति में पड़ जाय उस समय हमें अपनी शक्ति के अनुसार उसकी सहायता करनी चाहिए और कुछ समय तक उसके साथ रहना चाहिए। यदि कोई मनुष्य किसी विशेष व्यक्ति के भरोसे अथवा आसरे, प्रवास में आया हो तो इसे सब अवस्थाओं में उसकी सहायता करनी चाहिए।

सवारियों में वैठने के समय शिष्टाचार की बड़ी आवश्यकता है। लोगों को इस प्रकार न वैठना चाहिए जिसमें दूसरों को वैठने के अथवा सामान रखने के लिए स्थान न मिले। स्वार्थ के वश होकर लोग बहुधा दूसरों को वैठने के लिए स्थान ही नहीं देते और रेल में तो बहुधा उन्हें अपने डब्बे में ही नहीं आने देते। इस प्रकार की उद्दंडताओं से कभी-कभी यात्रियों में परस्पर मार-पीट तक हो जाती है जो असभ्यता का एक बड़ा भारी चिह्न है। रेल-गाड़ियों के अप्रबन्ध के कारण लोगों को कभी-कभी एक-दूसरे की परवाह न कर पशुओं की तरह भागना पड़ता है और अपने ही सुभीते की ओर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी अवस्था में भी यदि लोग स्वार्थ की मात्रा कम करके धीरज और उदारता से काम लें तो गाड़ियों में सबको उचित स्थान मिल सकता है और लोग व्यर्थ की धक्का-मुक्की से बच सकते हैं। यहां हम रेल के कर्मचारियों से अनुरोध करते हैं कि वे अधिक सभ्यता और शिष्टाचार से यात्रियों के साथ वर्ताव करें जिससे इन्हें गँवारी करने का कोई अवसर ही न मिले। यदि किसी धनी अथवा प्रतिष्ठित आदमी के पास कोई साधारण अथवा गरीब यात्री आकर वैठ जावे तो उसे अपने अहंभाव में इस मनुष्य का तिरस्कार न करना चाहिए। हां, यदि कोई दुष्ट

मनुष्य गँवारी का व्यवहार करे तो उसे उसकी दुष्टता का बदला अवश्य दिया जावे।

यदि प्रवास में स्त्रियों का साथ हो तो पुरुषों का कर्त्तव्य है कि ये उनके सुभीते का पूरा ध्यान रक्खें। स्त्रियों के आवश्यक कार्य्य समाप्त हो जाने पर ही पुरुष अपने कामों को निपटाने का उद्योग करें। ऐसा न हो कि स्त्रियों की आवश्यकताओं को रोककर पुरुष बलपूर्वक अपने कार्य साधें। अबलाओं को संकट में पड़े हुए अथवा पड़ते हुए देखकर पुरुषों को तन-मन-धन से उनकी रक्षा करनी चाहिए। यदि उनके सतीत्व की रक्षा करने में पुरुषों को अपने प्राण भी देने पड़ें तो कोई बड़ी बात नहीं है। जो मनुष्य इतने ऊँचे विचारों से प्रेरित होगा वह कम-से-कम ऐसा कभी नहीं कर सकेगा कि पानी लेने के लिए स्त्रियों को खड़ी रखकर स्वयं कुएँ की पाट पर बैठकर आनन्द से घंटों स्नान करे और कपड़े धोवे। जो व्यवहार स्त्रियों के प्रति कहा गया है वह बूढ़ों, बालकों और अपाहिजों के साथ किया जाय।

विदेश में पहुँचकर वहाँ के लोगों से बातचीत करने में उनकी भाषा, भेष, भोजन और रीति की तीव्र आलोचना करना उचित नहीं, चाहे ये सब बातें किसी को अनोखी अथवा अनुचित क्यों न मालूम पड़ें। साथ ही यह भी अनुचित है कि मनुष्य अपने देश की इन सब बातों की आवश्यकता से अधिक प्रशंसा करे, चाहे उसका कहना सब प्रकार से भले ही सत्य हो। दूसरे देश के हीन लोगों से भी सभ्यता और सहानुभूति का व्यवहार होना चाहिए।

(९) श्मशान-यात्रा में

हिन्दुस्थानी लोगों में छुआछूत और जाति-भेद का विचार होने के कारण लोग बहुधा अन्य जाति-वालों की श्मशान-यात्रा

में सम्मिलित नहीं होते, यद्यपि यह प्रथा दूषित है। हमलोगों में यह भी कुप्रथा है कि बहुधा चुने हुए मित्रों और नातेदारों को ही मृत्यु की सूचना दी जाती है, इसलिये जिन लोगों के पास ऐसी सूचना नहीं पहुँचती, वे अन्य स्थान से समाचार पा लेने पर भी कभी-कभी संकोच-वश अपने साथियों की अरथी के साथ नहीं जाते। ऐसी अवस्था में भी जब तक कोई विशेष कारण न हो तब तक हमलोगों को अपने धर्म-वाले किसी सज्जन की मृत्यु का समाचार किसी भी प्रकार मिलने पर उसकी श्मशान-यात्रा में जाना उचित है। कई लोग केवल बड़े आदमियों की मिट्टी में जाना आवश्यक और उचित समझते हैं, परन्तु इससे अधिक पुण्य उन लोगों की मिट्टी में शामिल होने से मिलता है जिनके न कोई मित्र हैं, न सहायक और न नातेदार हैं। इस विषय में हिन्दुस्थानियों को अन्य धर्म-वालों से बहुत कुछ सीखना है। हम लोग अपनी विचार-संकीर्णता से सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं अथवा नेताओं का भी पूरा-पूरा अन्तिम आदर नहीं कर सकते। लोगों के पतित और ईर्षा-पूर्ण विचारों के कारण उन्हें नीति और शिष्टाचार का कुछ भी ध्यान नहीं रहता।

जहाँ तक हो श्मशान-यात्रा में हमलोगों को हिन्दू-धर्म के अनुसार नंगे-पाँव जाना चाहिए। यदि किसी कारण से इस नियम का पालन न हो सके तो कम-से-कम अरथी में कंधा देने के समय अवश्य ही जूते उतार दिये जायँ। अरथी को ले जाते समय जल्दी-जल्दी चलना अनुचित है। लोग संसारी कामकाजों को इतना महत्व देते हैं कि वे उतावली में मृतक की अन्त्येष्टि-क्रिया भी बहुधा पूर्णता से नहीं करते। श्मशान-यात्रा में लोगों को जोर-जोर से बातें न करनी चाहिए और न हँसना ही चाहिये। इस अवसर पर यह भी आवश्यक है कि सब

लोग जहाँ तक हो इकट्ठे अरथी के साथ चलें, अलग-अलग टुकड़ियाँ न बनावें। इस यात्रा में पान खाना और तमाखू पीना भी असभ्यता है।

श्मशान में तब तक ठहरना चाहिए जब तक लाश पूरी न जल जावे। इस अवधि में लोग साधारण बातचीत करके अपना समय काट सकते हैं और पान-बीड़ी भी खा-पी सकते हैं; पर उन्हें कोई मनोरञ्जन का काम न करना चाहिए। एक बार कुछ लोगों ने यह समय ताश खेलकर बिताया था; पर ऐसा करना परम निन्दनीय है। किसी-किसी शिक्षित जाति में यह चाल है कि शव को चिता पर रखने के पूर्व उपस्थित सज्जनों में से कोई एक महाशय मृत व्यक्ति के गुण-कथन पर व्याख्यान देते हैं और उसके कुटुम्बियों और उत्तराधिकारियों के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं। प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सम्बन्ध से तो यह व्याख्यान बहुत ही आवश्यक समझा जाता है; पर इस प्रथा से शिष्टाचार का इतना घना सम्बन्ध है कि मेरी समझ में इसका प्रचार सर्वत्र होना चाहिए। सारांश यह है कि हम मृत प्राणी के शरीर और आत्मा का जितना ही अधिक आदर करेंगे उतनी ही हमारी उदारता सिद्ध होगी।

श्मशान से लौट कर बिना स्नान किये मृतक के घर अथवा अपने घर नहीं आना चाहिए। श्मशान से लौटते समय मार्ग के किसी जलाशय में स्नान करके मृतक के घर को और फिर अपने घर को आना उचित है। मार्ग में उसी गंभीरता का अवलम्ब करना चाहिए जिसका उल्लेख पहिले हो चुका है। यदि हो सके तो मृतक के सम्बन्धियों से सहानुभूति प्रकट करने के लिए उनके यहाँ दूसरे दिन फिर जाना उचित है।

जो लोग किसी की मिट्टी में जाते हैं वे बहुधा तेरही के दिन भोजन के लिए निमंत्रित किये जाते हैं। इन लोगों को यदि

कोई सामाजिक अथवा धार्मिक बन्धन न हो तो उस भोज में अवश्य ही सम्मिलित होना चाहिए जिससे मृतक के सम्बन्धियों को परम अनुग्रह के ऋण से कुछ अंश में मुक्त हो जाने का अवसर मिल जावे।

(१०) जातीय व्यवहार में

जाति-वालों और सम्बन्धियों के साथ शिष्टाचार का पूरा पालन न करने से बहुधा आपस में वैमनस्य हो जाता है; इसलिये इन लोगों के साथ उचित व्यवहार करने में बड़ी दूरदर्शिता और सावधानी की आवश्यकता है। लोगों को चाहिए कि जहाँ तक हो अपने जाति-वालों और सम्बन्धियों में धन, पदवी और विद्या के कारण उँचाई-निचाई का विशेष अन्तर न मानें और सब के साथ यथासंभव प्रायः एक ही सा प्रेम-पूर्ण व्यवहार करें। जाति के साधारण से साधारण मनुष्य को भी इस बात का ज्ञान न होने पावे कि जाति का दूसरा मनुष्य मेरी हीनता के कारण मुझे तुच्छ समझता है। जातीय सभाओं में भी जहाँ तक हो, गरीब अशिक्षित तथा साधारण स्थिति-वाले व्यक्तियों को भी जान-बूझ-कर, नीचा स्थान न दिया जाय। जाति के बड़े लोगों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने साधारण स्थिति-वाले भाइयों को, सुख-दुःख है में उनके घर जाकर अपने प्रेम का परिचय देवें। यदि ऐसा न किया जायगा तो जाति-बन्धन दृढ़ नहीं रह सकता।

जाति-वालों के यहाँ से किसी आवश्यक कार्य का निमन्त्रण आने पर उसका पालन अवश्य किया जाय। यदि किसी विशेष कारण से निमंत्रण स्वीकृत करना इष्ट न हो तो इस बात की सूचना नम्रता-पूर्वक दे देनी चाहिए। किसी के यहाँ भोजन करते समय अथवा उसके पश्चात् रसोई के विषय में कोई

कटाक्ष करना उचित नहीं, चाहे वह भोजन तुम्हारी रुचि के अनुकूल न हो। धनाढ्य लोगों को साधारण स्थिति के लोगों के यहाँ रुपये-पैसे का व्यवहार देने में सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि व्यवहार का परिमाण दूसरे मनुष्य की स्थिति के अनुसार हो जिससे उसे यह न जान पड़े कि मुझ पर धन का व्यर्थ दबाव डाला जाता है। उसको दिये जाने-वाले वस्त्र और दूसरे पदार्थ इतने बहुमूल्य न हों कि वह साधारण मनुष्य उनको धनवान के धन की प्रदर्शिनी समझे। बातचीत में भी ऐसा कोई भेद-भाव न दिखाई दे जिससे किसी को अपनी हीनता का अनुभव होने लगे और उससे मन में खेद उत्पन्न हो। जाति-वालों के यहाँ कम-से-कम दो-एक महीने में एक बार अवश्य जाना चाहिये। उस मनुष्य के यहाँ हमें विशेष-कर जाना आवश्यक है जो हमारे यहाँ बहुधा आया करता हो। यद्यपि किसी के यहाँ बार-बार जाना अशिष्ट समझा जाता है; तथापि उसके यहाँ कभी न जाना और भी अशिष्ट है।

जाति-वालों के यहाँ गमी में एक-दो बार अवश्य जाना चाहिए और उनसे सहानुभूति-सूचक वार्तालाप करना चाहिए। यदि उनके यहाँ स्त्रियों के भी आने-जाने का सम्बन्ध हो तो ऐसे अवसर पर स्त्रियों का जाना भी आवश्यक है। इस अवसर पर किसी के यहाँ सवारी में बैठकर जाना उचित नहीं; पर यदि सवारी के बिना काम न चल सके तो उसे उस स्थान से कुछ दूरी पर छोड़ देना चाहिए और वहाँ से उसके यहाँ पैदल आना चाहिए। सारांश यह है कि ऐसा काम न किया जाय जिसमें बनावट या दिखावट दिखाई देवे।

तेवहारों के अवसर पर जाति-वालों के यहाँ जाना बहुत आवश्यक है। ऐसे समय में इस बात की बाट न देखनी चाहिए कि जब कोई हमारे यहाँ आयगा तब हम उसके यहाँ जाँयगे।

यदि दोनों पक्षों के मन में ऐसे ही विचार एक ही समय उत्पन्न हों तो उनका मिलना कभी सम्भव नहीं हो सकता। त्योहारों में जाति-वालों को भोजन कराना भी बहुत उपयुक्त है, विशेष-कर बड़े लोगों को इन अवसरों पर छोटों को निमंत्रित करना चाहिए। इस प्रकार के सम्मेलन में जाति के मुखिया जाति-वालों को आवश्यक उपदेश भी दे सकते हैं जिससे उनमें प्रचलित कुरीतियों का परिहार हो सके।

यदि जाति में किसी मनुष्य पर संकट उपस्थित हो जावे तो जाति-वाले प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी शक्ति के अनुसार तन-मन-धन से उसकी सहायता करे। इस उपाय से अकाल, रोग, विप्लव, राजदण्ड आदि के समय किसी भी जाति के लोग रक्षा पा सकते हैं और सजातियों को पुण्य का भागी बना सकते हैं।

यद्यपि जातीय पक्षपात कुछ सीमा तक उचित और शिष्ट समझा जाता है, तथापि सीमा के बाहर इसका प्रचार त्याज्य है। कोई-कोई लोग यहाँ तक जातीय पक्षपात करते हैं कि यदि उन्हें कोई पद वा अधिकार प्राप्त हो जाता है तो वे अपने ही जाति-वालों को नौकरियाँ दिलाते हैं। इस पक्षपात से केवल अनीति ही उत्पन्न नहीं होती; किन्तु दूसरे लोगों का हक मारा जाता है और बहुधा योग्य व्यक्तियों के बदले अयोग्य लोगों की नियुक्ति हो जाती है। इस प्रकार के पक्षपात के कारण कई लोगों को हानि उठानी पड़ी है।

जाति-वालों और सम्बन्धियों के यहाँ जाने के समय छोटे लड़कों के लिए कुछ मिठाई, खिलौने अथवा कपड़े आदि ले जाना आवश्यक है। पूज्य नातेदारों को रुपये की भेंट करना चाहिए। जहाँ बड़े लोगों के चरण छूने की चाल है वहाँ इस

प्रथा का पालन किया जाय। यदि नातेदार के यहाँ उत्सव के अवसर पर जाने में कोई अड़चन आ जावे तो उसके यहाँ किसी उपाय से व्यवहार का रुपया और कपड़ा अवश्य भिजवा दिया जाय। ऋतु के अनुसार सम्बन्धियों के यहाँ फल, मेवा आदि भेजना भी शिष्टाचार का लक्षण है। यदि धनाढ्य लोग अपने निर्धन जाति-वालों और सम्बन्धियों की कन्याओं का विवाह और बालकों का यज्ञोपवीत करा दिया करें अथवा इनकी शिक्षा में उचित सहायता दिया करें तो ये काम केवल शिष्टाचार ही के नहीं; किन्तु परम पुराय के प्रकाशक होंगे।

यदि कोई जाति-वाला अथवा सम्बन्धी किसी कठिन रोग से ग्रस्त हो जाय तो उसकी ख़बर पूछने और चिकित्सा में यथा-शक्ति सहायता देने के लिए दो-चार बार जाना आवश्यक है। ये बातें केवल शिष्टाचार की हैं; तथापि जो लोग किसी दुखित व्यक्ति के साथ अधिक भलाई करना चाहते हैं, उनका यह काम पुराय, परोपकार और नीति का होगा।

(११) पंचायत में

पंचायत में प्रत्येक दल के मुखियों को अपना मत प्रकट करने के लिए पूरा अवसर दिया जावे। जब तक कोई आदमी अपने पक्ष की युक्तियाँ उपस्थित करता रहे तब तक दूसरे पक्ष-वाले को उन्हें काटने का अधिकार न देना चाहिए। एक पक्ष का कथन समाप्त होने पर विरुद्ध पक्ष-वाले को बोलने का अधिकार दिया जावे। सरपंच का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक पक्ष के भाषण के लिए उचित और उपयुक्त समय देवे। पंचायतों में बहुधा एक ही समय कई लोग बोलते हैं और कभी-कभी तो उनमें दस-दस पाँच-पाँच आदमी मिलकर और अपनी अलग-अलग टोलियाँ बनाकर आपस में वाद-विवाद करते रहते हैं। इस प्रथा से समय और विषय का व्यर्थ ही नाश होता है।

पंचायत में जो प्रार्थी आते हैं उनके साथ धन, पदवी आदि के कारण पक्षपात न किया जावे। पंचायत के अध्यक्ष को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वाद-विवाद में कोई व्यक्तिगत आक्षेप न आने पावे और न विवादियों का आपसी झगड़ा बढ़ने पावे। अनावश्यक बातें करने-वाले व्यक्ति की बातचीत कुछ कम कर दी जावे। स्त्री-प्रार्थियों से सब के सामने इस प्रकार के कोई प्रश्न न किये जावें जिनका उत्तर देने में उन्हें संकोच होवे। जहाँ तक हो नाबालिग लड़कों की गवाही पर किसी झगड़े का निबटारा न किया जावे।

पंचायत का कार्य आवश्यकता से अधिक न बढ़ाया जावे और रात-रात-भर बैठकर पंचायत न की जावे। सरपंच को निष्पक्ष रहना चाहिए और अपने उत्तरदायित्व का पूरा विचार करके अपना अंतिम निर्णय सुनाना चाहिए। जो अध्यक्ष कान का कच्चा हो और किसी बात का स्वयं निर्णय करने की शक्ति न रखता हो उसे सभा का प्रधान न बनाना चाहिए। केवल प्रतिष्ठा पाने के लोभ में पड़कर उसे दूसरों को हानि पहुँचाना उचित नहीं।

झूठा निर्णय करना अथवा किसी दल के प्रति अत्याचार करना केवल सदाचार ही के विरुद्ध नहीं; किन्तु शिष्टाचार के भी विरुद्ध है। जो मनुष्य प्रमुख, चतुर और प्रभावशाली समझा जाता हो उसके लिए यह निन्दा की बात है कि वह प्रकट रूप से असङ्गत बातें करे और अपने पक्ष का समर्थन करने में दूसरे पक्ष की बातों का कुछ भी विचार न करे। प्रपंचों पंचों के विषय में किसी कवि ने ठीक कहा है कि "नर्क परैं तिनके पुरखा, जे प्रपंच करैं अरु पंच कहावैं"। पंचायत के सभासदों को इस उपालम्भ से सदैव बचना चाहिए।

पंचायत में जो लोग बुलाए जायँ उनके मत पर ध्यान देना और उस पर विचार करना बहुत आवश्यक है। ऐसा न होना चाहिए कि जो मनुष्य पंचायत में बुलाया जावे उससे कोई सम्मति न ली जाय। पुराने विचार-वालों को नये विचार-वालों के मत को घृणा की दृष्टि से न देखनी चाहिए और न नये विचार-वालों को पुराने लोगों की प्रत्येक बात का खण्डन करना चाहिये। यदि कोई छोटी उमर-वाला आदमी कोई उचित प्रस्ताव करे अथवा न्याय-पूर्ण सम्मति देवे तो उसका भी आदर करना उचित और आवश्यक है।

पंचायत के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिये जहाँ सब दलों के लोग सुभीते से पहुँच सकें और जहाँ किसी विशेष व्यक्ति अथवा दल को कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो सके। कम-से-कम वादी अथवा प्रतिवादी के घर पंचायत करना अनुचित है; क्योंकि कोई भी आदमी किसी के घर जाकर विशेष-रूप से उसका विरोध नहीं कर सकता। पंचायत के निश्चित समय पर ध्यान रखने की बड़ी आवश्यकता है। किसी को यह उचित नहीं है कि वह किसी काम में समय पर न जाकर दूसरे लोगों को व्यर्थ ही बहुत समय तक बैठा रक्खे और उनके काम में बाधा डाले।

—: * :—

पाँचवाँ अध्याय

व्यक्तिगत शिष्टाचार

(१) सम्भाषण में

मनुष्य की विद्या, बुद्धि और स्वभाव का पता उसकी बात-चीत से लग जाता है, इसलिये उसे अपने विचार प्रकट करने के लिए बात-चीत में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। सम्भाषण में सावधानी की आवश्यकता इसलिये भी है कि बहुधा बात ही बात में क्रोध बढ़ आता है। यथार्थ में मनुष्य की बात-चीत ही उसके कार्यों की सफलता अथवा असफलता का कारण होती है। किसी कवि ने कहा है, "कहैं कृपाराम, सब सीखिबो निकाम, एक बोलिबो न सीखो, सब सीखो गयो धूर में"। जिसकी बात-चीत में सभ्यता या शिष्टाचार का अभाव रहता है उससे लोग बातचीत करना नहीं चाहते।

सम्भाषण करते समय श्रोता की मर्यादा (हैसियत) के अनुरूप 'तुम', 'आप' अथवा 'श्रीमान्' का उपयोग करना चाहिये। इनमें से आप शब्द इतना व्यापक है कि वह 'तुम' और 'श्रीमान्' का भी स्थान ग्रहण कर सकता है। 'तुम' का उपयोग अत्यन्त साधारण स्थिति के लोगों के लिए, और 'श्रीमान्' का उपयोग अत्यन्त प्रतिष्ठित महानुभावों के लिए किया जावे। बहुत ही छोटे लड़कों को छोड़कर और किसी के लिए 'तू' का उपयोग करना उचित नहीं। किसी के प्रश्न का उत्तर देने में 'हां' या 'नहीं' के लिए केवल सिर हिलाना असभ्यता है। उसके लिए 'जी, हाँ' या 'जी, नहीं' कहने की बड़ी आवश्यकता है। बात-चीत इस प्रकार रुक-रुककर

न की जावे जिससे श्रोता को उकताहट मालूम होने लगे। बात-चीत करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बोलने-वाला बहुत देर तक अपनी ही बात न सुनाता रहे जिससे दूसरों को बोलने का अवसर न मिले और वे बोलने-वाले की बक-बक से ऊब जावें। बात-चीत बहुधा संवाद के रूप में होना चाहिये जिससे श्रोता और वक्ता का अनुराग सम्भाषण के विषय में बना रहे।

सभ्य वार्तालाप में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि किसी के जी को दुखाने-वाली कोई बात न कही जाय। सम्भाषण को, जहाँ तक हो सके, कटाक्ष, आक्षेप, व्यङ्ग, उपालम्भ और अश्लीलता से मुक्त रखना चाहिये। अधिकार की अहम्मन्यता में भी किसी के लिए कटु शब्द का प्रयोग करना अपने को असभ्य सिद्ध करना है। किसी-किसी को बोलते समय बीच-बीच में 'क्या कहते हैं', 'इसका क्या नाम', 'जो है सो करके', 'राम आप का भला करे', आदि कहने का अभ्यास रहता है। ऐसे लोगों को अपनी आदत सुधारनी चाहिये; पर दूसरों को उचित नहीं है कि वे उनके इन दोषों पर हँसें। कई लोग बात-चीत में किसी बात की सत्यता सिद्ध करने के लिए सौगंध खाया करते हैं। शिक्षित लोगों में यह दोष न होना चाहिये। यदि वे भी गुन्डों के समान—'जवानी की कसम' या 'ईमान से' कहेंगे तो उनका हल्कापन प्रकट होगा।

किसी नये व्यक्ति के विषय में परिचय प्राप्त करने के लिए बात-चीत में उत्सुकता प्रकट न की जावे और जब तक बड़ी आवश्यकता न हो तब तक किसी की जाति, वेतन, वंशावली, वय आदि न पूछी जावे। किसी से कुछ पूछते समय प्रश्नों की झड़ी लगाना उचित नहीं। यदि कोई सज्जन तुम्हारा प्रश्न सुन-कर भी उत्तर न दे तो फिर उससे उसके लिये अधिक आग्रह

न करना चाहिए। यदि ऐसा जान पड़े कि वह उत्तर देना भूल गया है तो अवश्य ही उससे दूसरी बार नम्रता-पूर्वक प्रश्न किया जावे।

बात-चीत में आत्म-प्रशंसा को यथा-सम्भव दूर रखना चाहिये। साथ ही बात-चीत का ढंग भी ऐसा न हो कि सुनने-वाले को उसमें अपने अपमान की झलक दिखाई देवे। बात-चीत में विनोद बहुत ही आनन्द लाता है; परन्तु सदैव ही हँसी-ठट्ठा करना वक्ता और श्राता दोनों के लिए हानि-कारक है। सम्भाषण में उपमा और रूपक का प्रयोग भी बड़ी सावधानी से किया जावे, क्योंकि इसमें बहुधा अर्थ का अनर्थ हो जाने का डर रहता है। यदि वार्तालाप करते समय कवियों के छोटे-छोटे पद्यों और कहावतों का उपयोग किया जावे तो इनसे बोल-चाल में सरसता और प्रामाणिकता आ जाती है; तथापि अति सब की बुरी होती है।

यदि कोई दो-चार सज्जन इकट्ठे किसी विषय पर बात-चीत कर रहे हों तो अचानक उनके बीच में जाना अथवा इनकी बातें सुनना अशिष्टता है। ऐसे अवसर पर लोगों के पास जाकर बिना पूछे ही कुछ बातचीत करना और भी अनुचित है। कभी-कभी किसी मनुष्य को चुपचाप देखकर लोग उससे कुछ कहने का आग्रह करते हैं। ऐसी अवस्था में उस मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह कोई मनोरंजक बात या विषय छेड़कर उनकी इच्छा पूर्ति करे।

जब कोई बातचीत करता हो उस समय बीच में बोलना अथवा वक्ता की बात काटना असभ्यता है। यदि किसी को दूसरे की बात के विरुद्ध कहना हो तो बोलने-वाले की बात समाप्त होने पर अथवा बात-चीत में उसके कुछ ठहर जाने पर ही उसे कुछ

कहना चाहिये। कभी-कभी बोलने-वाला लगातार बोलता ही जाता है और दूसरे को कुछ कहने का अवसर ही नहीं देता। ऐसी अवस्था में, नम्रता-पूर्वक, बोलने-वाले से अपने बोलने की अनुमति लेनी चाहिये। कुछ हल्के हृदय-वाले लोग किसी के मुँह से अशुद्ध उच्चारण सुनकर हँस देते हैं; पर यह प्रत्यक्ष असभ्यता है।

किसी की असम्भव बातें सुनकर भी हाँ में हाँ मिलाना चापलूसी है और न्यायसंगत बातें सुनकर भी उनका खंडन करना दुराग्रह है। लोगों को इन दोषों से बचना चाहिये। यद्यपि वार्तालाप में दूसरे के मत का सम्मान करने में अथवा उसकी प्रशंसा के दो-चार शब्द कहने में चापलूसी का कुछ आभास रहता है; तथापि इतनी चापलूसी के बिना संभाषण नीरस और अप्रिय हो जाता है। इसी प्रकार अपने मत के समर्थन में और दूसरे के मत का खंडन करने में कुछ न कुछ दुराग्रह दिखाई देता है, तो भी इतना दुराग्रह सभ्य और शिक्षित समाज में क्षंतव्य है। किसी अनुपस्थित सज्जन की अकारण निन्दा करना शिष्टता के विरुद्ध है। यदि बात-चीत में ऐसे महाशय का उल्लेख होवे तो उसके नाम के पूर्व या पीछे किसी आदर-सूचक शब्द का प्रयोग करना चाहिए। विद्वानों के समाज में मत-भेद होने के अनेक कारण उपस्थित होते हैं, इसलिये जब किसी के मत का खंडन करने का अवसर आवे तब उस मत का खंडन नम्रता-पूर्वक क्षमा-प्रार्थना करके और ऐसी चतुराई से करना चाहिये जिसमें विरुद्ध मत-वाले को बुरा न लगे। बात-चीत में क्रोध के आवेश रोकना चाहिये और यदि यह न हो सके तो उस समय मौन ही धारण करना उचित है। व्यंग्य वचनों का उत्तर व्यंग्य ही से देना नीति की दृष्टि से अनुचित नहीं है; तथापि शिष्टाचार इन्हें कम-से-कम एक बार सहन करने का परामर्श देता है।

जिससे बात-चीत की जाती है उसकी योग्यता का विचार करके वर्णनात्मक अथवा विचारात्मक विषय पर सम्भाषण किया जावे। नवयुवकों से वेदान्त की चर्चा करना और वयोवृद्ध लोगों को शृंगार रस की विशेषताएँ बताना शिष्टाचार के विरुद्ध है। सड़क पर खड़े होकर अथवा चलते हुए दूसरे घर की किसी स्त्री से बातचीत करना अशिष्ट समझा जाता है। यदि कोई मनुष्य किसी विचारात्मक कार्य में लगा हो तो उसके पास ही जोर-जोर से बात न करनी चाहिये। रोगी मनुष्य से अधिक समय तक बातचीत करना उसके लिये हानि-कारक है और उससे रोग की भयंकरता का उल्लेख करना भयानक है। यदि कोई तुमसे तुम्हारे अनुपस्थित मित्र या सम्बन्धी की निन्दा करे तो तुम्हें नम्रता-पूर्वक उसे इस कार्य से विरत कर देना चाहिये और यदि इतने पर भी वह न माने तो तुम्हें किसी मिस से उस समय उसके पास से चले आना चाहिये। सम्भव है कि इससे उसे तुम्हारी अप्रसन्नता और अपनी मूर्खता का कुछ आभास हो जायगा। जो मनुष्य स्वयं किसी दूसरे की अकारण निन्दा नहीं करता, उसके पास ऐसी निन्दा करने का औरों को भी बहुधा साहस नहीं होता। पर-निन्दक को सभ्य तथा शिक्षित लोग बहुधा अनादर की दृष्टि से देखते हैं।

किसी सभा या जमाव में अपने मित्र अथवा परिचित व्यक्ति से ऐसी भाषा का अथवा ऐसे शब्दों का उपयोग न करना चाहिये जिसे दूसरे लोग न समझ सकें अथवा जो उनको विचित्र जान पड़े। ऐसे अवसर पर किसी विशेष विषय की अथवा अपने ही धंधे की या अपनी ही नौकरी की बातें करने से दूसरे लोगों को अरुचि उत्पन्न हो सकती है। यदि किसी विशेष अथवा गहन विषय पर बहुत समय तक संभाषण करने की

आवश्यकता न हो, तो थोड़े-थोड़े समय के अन्तर पर विषय को बदल देना उचित होगा।

संभाषण में थोड़ा-बहुत विनोद आनंद देता है; पर उसकी अधिकता से बातचीत में फीकापन आ जाता है। किसी को लक्ष्य बनाकर विनोद करना अशिष्ट और हानि-कारक है। बातचीत में व्यक्ति-गत आक्षेप न आना चाहिये। बातचीत करते समय भाषा की उपयोगिता पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। कई लोग साधारण पढ़े-लिखे लोगों के साथ बात-चीत करने में 'विचार-स्वातंत्र्य', 'व्यक्तिगत आक्षेप', 'वैयक्तिक धारणा' आदि शब्दों का उपयोग करते हैं; पर ये शब्द साधारण पढ़े-लिखे लोगों की समझ में नहीं आ सकते। इसी प्रकार पंडितों के समाज में मनुष्यों के लिए मानस, पिता के लिए बाप, माता के लिए महतारी, और भोजन के लिए खाना कहना असंगत है। हिन्दी-भाषी लोग बहुधा 'ष', 'श', 'व', और 'क्ष' के अशुद्ध उच्चारण के लिए प्रसिद्ध हैं। इसलिये शिक्षित लोगों को इस उच्चारण-दोष से बचना चाहिये। कई उर्दूदाँ सज्जन अपनी बातचीत में 'सिर', को 'सर', 'आंगन' को 'सहन', 'वजाज' को 'बज़्ज़ाज़' और 'कलम' को 'क़लम', कहकर अपनी भाषा-विज्ञता का परिचय देते हैं जो शिक्षित हिन्दी-भाषी समाज में उपहास-योग्य समझा जाता है। हमारे कई एक हिन्दी-भाषी भाई उर्दू उच्चारण की शुद्धता के मोह में पड़कर उस भाषा के 'ज' वाले शब्दों में 'ज़' का अशुद्ध उच्चारण करते हैं और कदाचित् यह समझते हैं कि इससे उनकी 'उर्दू-दानी' प्रकट होती है। हमने उर्दू न जानने वाले एक वकील महाशय को 'ज़ायदद', 'मज़वूर', हर्ज़', और 'ताज़' कहते सुना है; पर शिष्टाचार के अनुरोध से और उनके अप्रसन्न होने के भय से हमने उनको उनकी भूल नहीं बताई। हिन्दी के 'फ' अक्षर को भी कई लोग भूल से 'फ़'

कहते हैं: जैसे फ़ल, फूल और फ़न्दा। शिष्ट भाषण में इन सब दोषों से बचने की बड़ी आवश्यकता है। बिना उर्दू पढ़े, उस भाषा के ज़, क़, और ग़ का उच्चारण करने का किसी को साहस न करना चाहिये, क्योंकि इससे शिक्षित समाज में और विशेष कर शिक्षित मुसलमानों में हँसी होती है। ये लोग अपने शुद्ध उच्चारण पर बड़ा गर्व करते हैं और दूसरी जाति के अशुद्ध उच्चारण की बहुधा हँसी उड़ाया करते हैं। इसके लिए सब से उत्तम उपाय यही है कि इनके उर्दू शब्दों का उच्चारण हिन्दी के प्रचलित अक्षरों से किया जावे। हिन्दी लिपि में उर्दू अक्षरों के प्रतिनिधि हिन्दी अक्षरों के नीचे बिन्दी लगाने की जो अनिष्ट प्रथा है उससे उच्चारण-सम्बन्धी ये सब भूलें होती हैं। बिना किसी विशेष कारण के मातृ-भाषा को छोड़ अन्य भाषा में बातचीत करना शिष्टाचार के विरुद्ध है।

मातृ-भाषा में बातचीत करते समय बीच-बीच में अंगरेजी शब्द बोलने की जो दूषित प्रथा है उसका त्याग सर्वथा उचित है। इसी प्रकार मातृ-भाषा के ऐसे प्रान्तीय शब्द भी काम में न लाये जावें जो या तो अत्यन्त भद्देस हों या जिन्हें दूसरे प्रान्त-वाले न समझ सकें।

(२) पत्र-व्यवहार में

पत्र-व्यवहार भी एक प्रकार की बात-चीत है; परन्तु वह इसकी अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। बात-चीत में यदि कोई भूल हो जावे तो वह क्षमा के योग्य है, क्योंकि उसमें मनुष्य को सोच-विचार के लिए पूरा समय नहीं मिलता; परन्तु यदि पत्र लिखने में किसी कारण से जल्दी न की जावे तो लेखक को सोच-सोच-कर बातें लिखने का अधिक सुभीता रहता है। ऐसी अवस्था में यदि पत्र में कोई अनुचित बात लिखी जावे

तो उससे बात-चीत की अपेक्षा अधिक हानि होती है। सुनी हुई बात को मनुष्य कुछ समय के पश्चात् भूल सकता है; परन्तु लिखी हुई बात का प्रभाव पत्र देखने पर बार-बार पड़ सकता है। बात-चीत की अपेक्षा पत्र-व्यवहार में आदर-सूचक शब्दों का प्रयोग अधिकता से किया जाता है।

पत्र-व्यवहार के सम्बन्ध में कई बातें ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध बात-चीत से भी है। जिस प्रकार बातचीत में ऐसी कोई बात नहीं कही जाती जिससे सुनने-वाले के मन में खेद होवे अथवा उसको व्यर्थ ही संकोच में पड़ना पड़े, उसी भाँति, पत्र-व्यवहार में भी ऐसी कोई बात न लिखे जिससे पढ़ने-वाले को मानसिक कष्ट हो अथवा उस पर व्यर्थ ही दबाव पड़े। फिर जिस प्रकार बात-चीत में श्रोता की योग्यता के अनुरूप शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उसी तरह पत्र-व्यवहार में ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिये जिसे पढ़ने-वाला समझ सके।

हिन्दी में पत्र लिखने की आज-कल दो रीतियाँ प्रचलित हैं—एक पुरानी, दूसरी नयी। पुराने विचार के लोगों को पुरानी रीति से और नये विचार-वालों को नयी रीति से पत्र लिखना चाहिये। दोनों रीतियों का मिश्रण अनुचित और अशिष्ट समझा जाता है। विवाहादि उत्सवों के निमंत्रण-पत्र बहुधा पुरानी पद्धति से ही लिखे जाते हैं। सरकारी काम-काज के लिए जो प्रार्थना-पत्र लिखे जाते हैं उनका रूप और उनकी भाषा बहुधा निश्चित रहती है, इसलिये उनमें कोई अनावश्यक परिवर्तन न किया जावे। पत्र में तिथि और स्थान लिखना कभी न भूलना चाहिये। जहाँ तक हो अंगरेजी ईसवी सन् के बदले विक्रमीय संवत् का प्रयोग किया जावे।

पत्र की लिपि सुपाठ्य और सुडौल हो, शब्दों और लकीरों के बीच में कुछ अन्तर रहे और लेख में विराम-चिह्नों का

साधारण उपयोग किया जाय। विशेष-रूप से विराम-चिह्नों का प्रयोग करना पांडित्य का प्रदर्शन समझा जाता है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि घसीट-लिपि लिखने से लेखक विद्वान् माना जाता है; पर ऐसा मानना निर्मूल है। घसीट-लिपि लिखने से पढ़ने-वाले को उसके पढ़ने में बहुधा कष्ट होता है और कभी-कभी लेखक का अभिप्राय ही उसकी समझ में नहीं आता। इसलिये शिष्टाचार और सुविधा के अनुरोध से पत्र की लिपि ऐसी हो कि वह सरलता से पढ़ी जा सके। कई लोग अक्षरों की नोंकें इतनी लम्बी-चौड़ी फट-कारते हैं कि उनके कारण दूसरे अक्षरों तक का रूप लुप्त हो जाता है। यह चित्रकारी शिष्टाचार के विरुद्ध है। लिपि में अक्षरों का सिरा बाँधना सुन्दरता का साधन है। पत्र में काटा-कूटी बहुत कम हो।

आज-कल अंगरेजी शिक्षा के प्रभाव से हिन्दुस्थानी (हिन्दी-भाषी) अनेक सज्जन अपने मित्रों को ही नहीं, किन्तु अपने परिवार-वालों को भी अंगरेजी में पत्र लिखते हैं। ऐसा करना केवल अशिष्ट ही नहीं है, बरन जातीयता का विघातक है। जिस जाति में अपनी भाषा के प्रति आदर-बुद्धि नहीं वह जाति विना पेंदी का घड़ा है। हां, यदि विद्यार्थियों की अँगरेजी-योग्यता की जाँच करना अभीष्ट हो तो अवश्य ही उन्हें उस भाषा में पत्र लिखा जाय और उसका उत्तर उसी भाषा में देने के लिये उनसे आग्रह किया जाय।

पत्र में किसी बात को बहुत बढ़ाकर लिखना अनुचित है। अपना आशय स्पष्ट और संक्षिप्त रीति से प्रकट करना चाहिये। हाँ, जिस बात को विशेष रूप से समझाने की आवश्यकता हो उसे कुछ विस्तार-पूर्वक लिखने में हानि नहीं। पत्र में यदि किसी मनुष्य के विरुद्ध कुछ लिखने की आवश्यकता आ पड़े

तो वह केवल संकेत-रूप से लिखी जावे जिसमें आगे-पीछे पत्र किसी दूसरे के हाथ में पड़ने पर मान-हानि के अभियोग की आशंका न रहे। कई-एक ऐसे भी गूढ़ विषय होते हैं जो बहुधा पत्र में नहीं लिखे जाते और उनकी चर्चा भेंट होने पर ही अपने सामने हो सकती है; पर जो गूढ़ बातें किसी मुकद्दमे से सम्बन्ध रखती हैं वे आवश्यकता पड़ने पर वकील या मुख्तार को सावधानी से लिखी जा सकती हैं। जो बातें पत्र में लिखी जाती हैं वे एक प्रकार से स्थायी हो जाती हैं और अदालत में गवाही के तौर पर उपस्थित की जा सकती हैं, इसलिये कलम को कागज पर चलाने के पहिले लेखक को प्रत्येक बात दो-बार सोच लेना चाहिये। पत्र की भाषा, जहाँ तक हो, सहज और अलंकार-रहित हो। उसमें बड़े-बड़े शब्दों और वाक्यों का प्रयोग न किया जाय। बार-बार एक ही शब्द अथवा वाक्य को दुहराना अनुचित है। जहाँ तक हो पत्र में विदेशी शब्दों का उपयोग न किया जावे। निमंत्रण-पत्रों की भाषा शुद्ध हिन्दी होनी चाहिये। विद्वानों को जो पत्र लिखे जाते हैं उनमें थोड़े-बहुत कठिन शब्द आ सकते हैं; परन्तु साधारण लोगों को पत्र लिखने में कठिन, अप्रचलित और नये शब्दों का प्रयोग करना ठीक नहीं। शिक्षित लोगों की भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होनी चाहिये। यदि ऐसा न होगा तो शिक्षित समाज में लेखक का उपहास होगा।

जब किसी के पत्र का उत्तर देना हो तब उस पत्र में लिखी हुई प्रत्येक बात का उचित उत्तर देना चाहिये। यदि कोई बात ऐसी हो जिसका उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' में देने से अनर्थ होने की सम्भावना है तो उसका उत्तर न दिया जावे; पर ऐसा अवसर कम आता है। निकट सम्बन्धियों और घनिष्ठ मित्रों के पत्रों में दोनों ओर के कुशल-समाचार की शुभ कामना, बड़ों को प्रणाम

और छोटों को प्यार अवश्य लिखा जावे। साधारणतः निजी पत्रों में और-और बातों के साथ आब-हवा, रोग, फसल आदि का भी कभी-कभी उल्लेख रहता है। यदि किसी पत्र का उत्तर पाने की विशेष आवश्यकता हो तो अपने पत्र में इस बात की प्रार्थना कर देना अनुचित न होगा।

छोटों, बड़ों और बराबरी-वालों को पत्र लिखने के लिए जो उपयुक्त शब्द प्रचलित हैं उनको सावधानी से काम में लाना चाहिये। यदि पत्र में किसी दूसरे मनुष्य का उल्लेख हो तो जाति के अनुसार उसके पूर्व 'पंडित', 'ठाकुर', 'बाबू' अथवा 'लाला' शब्द का प्रयोग करना आवश्यक है। यदि शीघ्र ही किसी और उपपद का निश्चय न हो सके तो 'श्रीयुत' शब्द का ही उपयोग किया जावे। नाम के साथ 'जी, शब्द लगा देने से भी बहुधा आदर प्रकट हो जाता है। प्रतिष्ठित लोगों के साथ "श्रीमान्" जोड़ना और साधारण व्यक्ति के नाम में "श्रीयुत" लगाना चाहिए। स्त्रियों के नाम के पूर्व "श्रीमती" शब्द की और पीछे "देवी" की योजना की जावे। स्त्री का आस्पद पति के आस्पद के अनुरूप होता है।

पत्र किसी का भी हो, जब तक विशेष कारण न हो, उसका उत्तर देना आवश्यक है, क्योंकि लोग बहुधा उसी को पत्र लिखते हैं जिससे उन्हें कुछ आशा होती है और कभी-कभी पत्र ऐसे लोगों के पास भी लिखने का अवसर आ पड़ता है जिनसे पहिले कभी पत्र-व्यवहार नहीं हुआ। ऐसी अवस्था में पत्र का उत्तर न देने का प्रश्न भली-भाँति विचार लेना चाहिये। यदि कोई किसी के पत्र का उत्तर नहीं देता है तो पत्र लिखने-वाला उसे अपना अपमान समझता है और उत्तर न देने-वाले की ओर बहुधा बुरी धारणा कर लेता है। यदि पत्र-व्यवहार बहुत दिनों से चल रहा हो अथवा समय-समय पर होता रहा हो तो एक

साध पत्र का उत्तर न देने से विशेष हानि नहीं। पत्र मिलने के दूसरे या तीसरे दिन उसका उत्तर भेज देना आवश्यक है, क्योंकि लोग अपना पत्र भेजने के एक सप्ताह के भीतर ही उसका उत्तर पाने की आशा करते हैं। यदि दो-चार दिनों की देरी हो जावे तो वह क्षमा के योग्य है; परन्तु पखवारों या महीनों में उत्तर देना असभ्यता है। आवश्यक पत्रों का उत्तर बिना विलम्ब के भेजना चाहिये।

आजकल शिक्षा के प्रभाव से पत्रों का पता बहुधा अंगरेजी ढँग से लिखा जाता है। इस रीति से यह लाभ है कि चिट्ठी-पाने-वाले का पता लगाने में चिट्ठी-रसा को विशेष कठिनाई नहीं पड़ती। पुराने ढँग का पता एक लम्बे वाक्य के रूप में रहता है जिसमें से मतलब की बातें डाकघर को खोजकर निकालनी पड़ती हैं और उससे समय की बहुत हानि होती है। पते में पाने-वाले का नाम आदर-सूचक उपपदों के साथ लिखा जावे। उसको जो उपाधियाँ प्राप्त हों वे भी नाम के साथ लिखी जावें। निजी पत्रों में विद्या-सम्बन्धी उपाधियाँ बहुधा छोड़ दी जाती हैं।

गूढ़ विषय का पत्र कभी कार्ड पर न लिखना चाहिये। आज-कल डाक-महसूल दूना हो जाने के कारण लोग कार्डों का अधिक व्यवहार करने लगे हैं; परन्तु जहाँ तक हो प्रतिष्ठित लोगों को कार्ड के बदले लिफाफा ही भेजना उचित है। शिष्टाचार का एक साधारण नियम यह भी है कि कार्ड का उत्तर कार्ड में दिया जाय। यद्यपि रजिस्ट्री चिट्ठी विशेष-कर मुकद्दमों के सम्बन्ध में भेजी जाती है, तो भी बहुत ही आवश्यक निजी पत्र भी रजिस्ट्री करके भेजे जाते हैं। इनकी आवश्यकता तभी होती है जब चिट्ठी के खो जाने का अथवा देर से मिलने का भय हो। वैरंग पत्र कभी किसी को न भेजना चाहिये। यदि समय पर

टिकट, कार्ड या लिफाफा न मिल सके तो इस प्रकार का पत्र भेजा जा सकता है।

जहाँ तक हो शिक्षित लोगों को पत्र अपने हाथ से लिखा जावे। यदि अस्वस्थता की अवस्था हो अथवा कार्य की अधिकता हो, तो दूसरे से पत्र लिखाकर उस पर हस्ताक्षर कर देने से काम चल जाता है, तो भी इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि साधारण अवस्था में दूसरे के हाथ से लिखाये हुए पत्र से पाने-वाले को असंतोष होता है और वह पत्र-प्रेरक को कुछ अभिमानी समझने लगता है। छपे हुए साधारण और निमंत्रण-पत्र को भी लोग असंतोष की दृष्टि से देखते हैं, इसलिये यदि पत्र भेजने-वाला पत्र पाने-वाले की विशेष सहानुभूति प्राप्त करना चाहे तो छपे पत्रों में उसे अपने हाथ से दो चार अनुरोध-सूचक शब्द लिख देना चाहिये, जिससे पत्र पाने-वाले पर नैतिक प्रभाव पड़े।

(३) भेंट-मुलाक़ात में

लोग भेंट या मुलाक़ात के लिए उन्हीं के पास जाते हैं, जिनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध, स्नेह अथवा काम-काज होता है। कभी-कभी परिचित व्यक्ति के द्वारा अपरिचित, परन्तु प्रतिष्ठित लोगों से भी भेंट की जाती है। गोसाईं जी ने कहा है—

> " ईहि सन हठि करिहौं पहचानी।
> साधु तें होइ न कारज-हानी॥ "

जिसके घर भेंट करने को जाते हैं उसके सुभीते का भेंट करनेवाले को अवश्य ध्यान रखना चाहिये। किसी के यहाँ ऐसे समय पर न जाना चाहिये जब उसे किसी से मिलने का अवकाश या सुभीता न हो। घनिष्ठ मित्र एक-दूसरे से बिना किसी संकोच के दिन में कई बार मिलते हैं; पर इस अवस्था में भी शिष्टाचार पालने की आवश्यकता है। किसी के यहाँ

बिना किसी आवश्यक कार्य के दिन निकलते ही अथवा भोजन के समय या ठीक दोपहरी में जाना अनुचित है। अधिक रात को भी साधारण अवस्था में किसी के यहाँ न जाना चाहिये। काम-काजी लोगों को समय का बहुत संकोच रहता है; इसलिये किसी के यहाँ प्रायः आधे घंटे से अधिक बैठना उचित नहीं है। यदि इस अवधि में महत्व-पूर्ण बातचीत पूर्ण हो सके तो बहुत अच्छी बात है। जिस समय किसी मनुष्य की बातचीत में उदासीनता, शिथिलता अथवा उकताहट दीख पड़े उस समय समझ लेना चाहिये कि उसे मिलने का अधिक सुभीता नहीं है। इसलिये ऐसे संकेत को सूचना समझकर उसके यहाँ से चले आने का उपक्रम करना चाहिये। यदि वह जाने-वाले व्यक्ति के प्रस्ताव को सुनकर कुछ अधिक बैठने का अनुरोध करे तो यह अनुरोध मान लिया जावे और कुछ समय के पश्चात् उससे बिदा ग्रहण की जावे। भेंट के लिए आये हुए सज्जन से उसकी जाति और पद के अनुसार 'प्रणाम', 'नमस्कार', 'राम-राम' अथवा 'वंदगी' कहकर उसका अभिवादन करना चाहिये। परिचित लोगों को इस बात के लिए न ठहरना चाहिये कि जब दूसरा अभिवादन करेगा तब हम उसका उत्तर देंगे। भेंट होने पर एक-दूसरे का मुँह देखते रहना और कुछ न कहना बड़ी असभ्यता है। इसलिए मुख्य प्रयोजन अथवा और किसी उपयुक्त विषय पर चर्चा छेड़ देनी चाहिए। यदि दिन में एक से अधिक बार भेंट हो तो प्रत्येक बार मिलने पर भी अभिवादन करने में को हानि नहीं है। जहाँ तक हो अभिवादन के पश्चात् थोड़ी-बहुत बातचीत अवश्य कर ली जावे। यदि और कुछ न हो तो केवल कुशल-प्रश्न से ही काम चल सकता है।

किसी के यहाँ जाकर उसके कागज-पत्र, पुस्तकें अथवा दूसरे पदार्थ उठाना-धरना अथवा उन्हें बड़े ध्यान से देखना अनुचित

है। भेंट करने-वाले को उसी कोठे में बैठना चाहिए जो बैठक के लिए नियत हो और उस स्थान में तभी प्रवेश करना चाहिए जब गृह-स्वामी अथवा कोई अन्य पुरुष वहाँ उपस्थित हो। पुरुषों की अनुपस्थिति में किसी के यहाँ जाना संदेह की दृष्टि से देखा जाता है, इसलिये सभ्य लोगों को इस दोष से बचना चाहिये। जिन लोगों में पर्दे का विशेष प्रचार नहीं है उनके पास अनुमति मिलने पर स्त्रियों के उपस्थित रहते हुए भी जा सकते हैं। यद्यपि पश्चिमीय देशों में दरवाज़ा बंद रहने पर बाहर से पुकारने के लिए साँकल खटखटाना अथवा किवाड़ भड़काना अनुचित नहीं समझा जाता; तथापि हमारे देश में इन कार्यों को अनुचित समझते हैं। किसी के दरवाजे जाकर जोर-जोर से और लगातार पुकारना भी अनुचित है। दो-एक बार पुकारने पर मिलने-वाले को यह देखने के लिए ठहर जाना चाहिये कि कदाचित् आवाज सुनकर कोई द्वार खोलने को और कुछ सूचना देने को आवे।

गृह-स्वामी को उचित है कि वह अपने यहाँ आने-वाले सज्जन का उसकी योग्यता के अनुसार स्वागत करे और उसे आदर-पूर्वक बिठावे। कुशल-प्रश्न के पश्चात् उससे कुछ ऐसी बात करनी चाहिये जो उसकी रुचि के अनुकूल हो अथवा उसके काम-काज से सम्बन्ध रखती हो। उसके आने का कारण पूछने की उतावली कभी न की जावे। वह बात-चीत में बहुधा आप ही प्रकट हो जाता है अथवा कुछ समय के पश्चात् चतुराई से पूछा जा सकता है। यदि तुम्हें अधिक समय न हो और बैठने-वाले के कारण तुम्हारे किसी आवश्यक कार्य में हानि होने की सम्भावना हो तो तुम्हें अपनी कठिनाई नम्रता-पूर्वक और चतुराई से जता देनी चाहिये। ऐसे अवसर पर शिष्टाचार का अधिक पालन करने से लाभ के बदले हानि होगी। मिलने-वाले

को भी उचित है कि वह गृह-स्वामी के सुभीते का पूरा ध्यान रक्खे और उसके कुछ कहने से अप्रसन्न न हो। यदि किसी मुलाकाती को हमारे यहाँ बैठने में अधिक समय लग जावे तो हमारा कर्त्तव्य यह है कि हम उससे कुछ जल-पान करने के लिए निवेदन करें और यदि उसके अस्वीकृत करने पर भी हमें यह अनुमान हो कि आग्रह करने पर उसे आपत्ति न होगी तो हमें चाय, फल अथवा मिष्टान्न से उसको तृप्त करना चाहिये।

यदि किसी मित्र या परिचित व्यक्ति से बाहर अथवा सड़क पर भेंट हो तो वहाँ घण्टों खड़े रहकर बात-चीत करना उचित नहीं। यदि विषय लम्बा हो तो कुछ दूर तक साथ-साथ चलकर बात-चीत कर ली जावे; पर ऐसा न हो कि किसी को दूसरे की बात सुनने के लिए विवश होकर कई जरीब जाना पड़े।

यदि किसी बड़े आदमी के यहाँ मिलने को जाना हो तो उनके अवकाश का पूरा पता लगा लेना चाहिये और जाकर किसी के द्वारा अपने आने की सूचना भिजवा देनी चाहिये। उन सज्जन के पास पहुँचने पर उपयुक्त आसन ग्रहण करना उचित है और संक्षेप में उन्हें भेंट का तात्पर्य बता देना चाहिये। कार्य हो जाने पर कुछ समय और बैठना अनुचित न होगा। इसके पश्चात् पूर्वोक्त महाशय से आज्ञा लेकर चले आना योग्य है। किसी के यहाँ कभी न जाना जैसा अनुचित है उसी प्रकार बार-बार जाना अनुचित है। यदि किसी के यहाँ जाने से जाने-वाले को ऐसा जान पड़े कि उसके जाने से गृह-स्वामी को खेद होता है तो ऐसे मनुष्य के यहाँ उसे कभी न जाना चाहिये। कहा भी है—

वचनन में नहिं मधुरता, नैनन में न सनेह।
तहाँ न कबहूँ जाइये, कंचन वरषे मेह॥

एक-दूसरे के यहाँ आने-जाने से परस्पर मेल-मिलाप बढ़ता है; इसलिये यदि कोई परिचित व्यक्ति अथवा मित्र, जिसके साथ आवागमन का सम्बन्ध है, बहुत समय तक किसी के यहाँ न जावे, तो दूसरे मनुष्य को उसके यहाँ उपयुक्त अवसर पर जाना अनुचित न होगा। इससे इस बात का भी निर्णय हो जायगा कि वह मनुष्य जाने-वाले से किसी प्रकार अप्रसन्न तो नहीं है। बहुधा उच्च स्थिति के महानुभाव निम्न-स्थिति के लोगों के यहाँ मिलने नहीं आते। यदि उन्हीं का काम हो तो वे इन्हें बुलाने को बहुधा सवारी भेज देते हैं। दो-चार बार ऐसे महानुभावों की इच्छा-पूर्ति की जा सकती है; पर उनके बढ़ते हुए दुराग्रह को कम करने की आवश्यकता है। ये लोग निमन्त्रण पाकर भी अपने से छोटे लोगों के यहाँ आने की कृपा नहीं करते, जिससे शिष्टाचार की बड़ी अवहेलना होती है। ऐसी अवस्था में सज्जनों का यह कर्त्तव्य है कि वे सदाचारी कंगाल के यहाँ भले ही चले जावें; पर दुराचारी महाजन के द्वार पर न झाँकें।

मुलाकाती के जाने के पूर्व हमें पान, सुपारी, इलायची आदि से उसका आदर करना चाहिये। जिस समय वह जाने लगे उसकी योग्यता के अनुसार खड़े होकर या द्वार तक जाकर अथवा दस कदम बाहर चलकर उसे अभिवादन-सहित विदा देनी चाहिये।

(४) परस्पर व्यवहार में

समाज में कुछ ऐसे व्यवहार होते हैं जो बदले के रूप में केवल उन्हीं व्यक्तियों के साथ किये जाते हैं जिन्होंने वैसा व्यवहार दूसरों के साथ किया है। कभी-कभी ऐसे व्यवहार इस आशा से भी आरम्भ किए जाते हैं कि आगे इन व्यवहारों का बदला मिलेगा।

और कुछ परिचय बढ़ेगा। दूसरे के यहाँ बैठने को जाना इसी प्रकार का व्यवहार है जिसमें व्यवहार करने-वाला मनुष्य इस बात की आशा करता है कि हम जिसके यहाँ जाते हैं वह भी कभी हमारे यहाँ आवे। यदि व्यवहार एक ही ओर से कुछ समय तक होता रहे और दूसरी ओर से प्रति-व्यवहार न किया जाय तो ऐसा व्यवहार बहुत दिन तक नहीं चल सकता। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य किसी की बीमारी की अवस्था में अथवा संकट के समय उसके यहाँ जावे, तो उसका भी कर्तव्य है कि ऐसे अवसर पर वह उसके यहाँ अवश्य जावे।

यदि किसी के यहाँ से हमारे यहाँ रुपये-पैसे के रूप में अथवा वस्त्र आदि के रूप में व्यवहार आवे तो हमें उसका हिसाब रखना चाहिये और उसके यहाँ वैसा ही कोई अवसर आने पर उतना ही व्यवहार करना चाहिये। यदि हम किसी अनिवार्य्य कारण से उस अवसर पर स्वयं उपस्थित न हो सकें तो हमें दूसरे के द्वारा अथवा डाक से व्यवहार भिजवा देना चाहिये।

भोजन के सम्बन्ध में भी परस्पर व्यवहार पालने की आवश्यकता है। जो व्यवहारी मनुष्य हमारे यहाँ भोजन करने को आवे उसके यहाँ हमें भी अवश्य जाना चाहिये। खान-पान के सम्बन्ध में जहाँ तक हो जाति-बंधन की रक्षा करते हुए इसी प्रकार का व्यवहार पालने की आवश्यकता है।

विवाह तथा दूसरे उत्सवों में जो लोग हमारी जैसी सहायता करते हैं उनके साथ हमें वैसा ही व्यवहार करने की आवश्यकता है। यदि कोई हमारे साथ बरात में जाता है तो हमें भी समय निकालकर उसके साथ ऐसे अवसर पर जाना आवश्यक है।

गमी में प्रति-व्यवहार पालने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह ऐसा अवसर है कि इस समय किये गये उपकारों को लोग

शीघ्र नहीं भूलते और सदैव इस बात के लिए तत्पर रहते हैं कि हम अपने उपकारी के संकट में सहायक होवें। जहां स्त्रियों में भी ऐसा व्यवहार प्रचलित है वहां स्त्रियों का भी कर्तव्य है कि वे अपनी संकट-ग्रस्त सखियों के यहां सहानुभूति प्रकट करने को जावें।

यदि हमें किसी उत्सव के अवसर पर दूसरे के यहां से पहले-पहल निमन्त्रण आवे तो जब तक कोई विशेष कारण न हो तब तक हमें उस निमन्त्रण का पालन करना चाहिये। इसी प्रकार यदि किसी नये स्थान से पहले-पहल व्यवहार आवे तो हमें उसे स्वीकार कर लेना चाहिये और स्मरण रख के उसे किसी उपयुक्त अवसर पर नियम-पूर्वक लौटा देना चाहिये। ऐसे अनेक व्यवहार हैं जो किसी न किसी ओर से पहले-पहल आरम्भ किये जाते हैं और उनमें यह नहीं देखा जाता कि दूसरी ओर से यह व्यवहार कभी हुआ है या नहीं। गमी में इस प्रकार का एक-पक्षीय विचार कभी न करना चाहिये, क्योंकि उसमें जाना पुण्य का कार्य है।

कई लोग ऐसे भी होते हैं जो यह चाहते हैं कि दूसरे लोग हमारे यहाँ आवें; पर हमें उनके यहाँ न जाना पड़े। इस प्रकार के लोगों को सोचना चाहिये कि ये सब व्यवहार परस्पर हैं और बिना आदान-प्रदान के थोड़े समय में बंद हो जाते हैं। कई लोगों को देखा है जो दूसरे के यहाँ उसके मरने पर भी नहीं जाते। आश्चर्य नहीं कि दूसरे लोग भी उनके साथ ऐसा ही व्यवहार करें। किसी कवि ने कहा है—

झुके अपने से, उससे झुक जाइये।
रुके अपने से, उससे रुक जाइये॥

(५) गुण-कथन में

संसारी काम-काज में अनेक अवसर ऐसे आते हैं कि जब हमें किसी के गुणों को प्रकट करने की आवश्यकता होती है। नौकरी आदि के लिए जो सिफारिश की जाती है वह भी एक प्रकार का गुण-कथन है। यद्यपि लोगों की दृष्टि में और स्वभाव से भी बहुत कम ऐसे मनुष्य हैं जो सर्वथा निर्दोष हों तथापि गुण-कथन में हमें जहाँ तक हो किसी व्यक्ति के साधारण दोषों को छिपाकर उसके गुणों का ही परिचय देना चाहिए। हाँ, यदि दोषों को छिपाने से विशेष हानि होने की सम्भावना हो तो गुण-कथन में विशेष विस्तार न किया जावे।

यदि कभी किसी के दोष प्रकट करने का अवसर आ जावे तो वे निन्दा के रूप में अथवा घृणा के साथ कभी न प्रकट किये जावें। किसी के दोष प्रकट करने का अपराध तभी क्षमा किया जा सकता है जब उससे सुनने-वालों को विशेष लाभ अथवा चेतावनी प्राप्त हो सके। केवल इसी प्रेरणा के आधार पर द्वेष प्रकट करने-वाला मान-हानि के अभियोग से रक्षा पा सकता है; क्योंकि यह अपराध राज-नियमों के अनुसार दण्डनीय है। शिष्टाचार की दृष्टि से और राजकीय नियमों से भी चोर को चोर कहना दण्डनीय अपराध है। यदि कोई विशेष प्रयोजन न हो तो किसी के दोष प्रकट करके मनुष्य को स्वयं हलका होना उचित नहीं। अपने जाति-वालों के दोष बताना तो और भी निन्दनीय समझा जाता है।

किसी की प्रशंसा बहुत बढ़ाकर करना उचित नहीं, क्योंकि उसमें लोगों को मिथ्यापन का सन्देह होने लगता है। जिस समय जिसके जितने गुणों को प्रकट करने की आवश्यकता हो उस समय उसके उतने ही गुण प्रकट किये जावें यदि कोई किसी का

साधारण परिचय ही पूछे तो उस समय उसकी गुणावली पर विस्तृत व्याख्यान देना अनावश्यक और अनुचित है। गुण-गान इस सावधानी से किया जावे कि उससे व्यंग्य की ध्वनि न निकले और सुनने-वाले को ऐसा न जान पड़े कि वक्ता अपनी इच्छा के विरुद्ध गुण-गान कर रहा है। यदि हमारे दो भले शब्द कह देने से किसी का महत्व-पूर्ण कार्य सिद्ध होता है तो हमें अपनी इच्छा के विरुद्ध भी उन शब्दों के कहने में आनाकानी न करनी चाहिये।

यदि हमसे कोई प्रशंसा-पत्र माँगे और हमें उस व्यक्ति के आचरण से पूरा संतोष न हो तो उस समय हमारा यह कर्त्तव्य है कि या तो हम किसी उचित उपाय से प्रशंसा-पत्र देने के अवसर को टाल देवें अथवा ऐसा प्रशंसा-पत्र लिख देवें जिसमें प्रशंसा की मात्रा साधारण हो। किसी भी अवस्था में ऐसा प्रशंसा-पत्र न दिया जावे और न ऐसा गुण-कथन किया जावे जिसमें स्पष्ट मिथ्यापन हो। बार-बार लोगों की सिफारिश करने अथवा उसे प्रशंसा-पत्र देने से उस गुण-कथन का मूल्य घट जाता है; इसलिए लोगों को बहुत सावधानी से दूसरों की प्रशंसा करनी चाहिये।

विवाहादि कार्यों में बहुधा ऐसा अवसर आ जाता है कि लोग किसी व्यक्ति के गुणों को न पूछकर उसके दोष पूछते हैं। ऐसी अवस्था में उत्तर देने-वाले को उचित है कि वह साधारण रीति से इतनी ही सूचना दे देवे कि अमुक मनुष्य के साथ सम्बन्ध होना ठीक है या नहीं। यदि प्रश्न पूछने-वाला मनुष्य चतुर होगा तो वह उत्तर देने-वाले मनुष्य के इतने ही संकेत से बहुत-कुछ समझ जायगा और उसे किसी व्यक्ति के दोष प्रकट करने के लिए बाध्य न करेगा।

लोगों को विदाई देने के लिए जो सभायें की जाती हैं उनमें केवल गुण-गान ही किया जाता है। कोई-कोई स्पष्ट-वक्ता ऐसे अवसर पर भी कभी-कभी दोषों का कुछ संकेत कर देते हैं; पर ऐसा संकेत केवल इसीलिये किया जावे कि उससे प्रशंसित सज्जन का आगे कुछ लाभ हो। यदि सार्वजनिक सभाओं में किसी सज्जन की सार्वजनिक कार्यवाही की आलोचना करनी हो तो उसमें गुणों और दोषों का उचित मिश्रण अनुचित नहीं समझा जाता।

मृत पुरुषों की निन्दा करना अत्यन्त निन्दनीय है, क्योंकि जिस पुरुष की निन्दा की जाती है वह उसका उत्तर देने को आ ही नहीं सकता। यथार्थ में मृत पुरुष की निन्दा करने-वाले व्यक्ति को पूरा कायर कहना चाहिये, क्योंकि जिस स्वतन्त्रता से वह मरे मनुष्य की बुराई कर सकता है उस प्रकार वह उसके जीवन-काल में निन्दा न कर सकता। जिन स्वर्गवासी सज्जनों के लिए शोक-सभायें की जाती हैं, उनमें उनके केवल गुण-गान की आवश्यकता है और उसीसे सभा के संचालकों की उदारता प्रकट हो सकती है तथा उपस्थित जनता को संतोष एवं उपदेश प्राप्त हो सकता है। शोक-सभाओं के प्रस्तावों की नकल मृत पुरुष के किसी मुख्य सम्बन्धी के पास अवश्य भेजी जावे। सार्वजनिक कार्य-कर्त्ताओं और प्रसिद्ध पुरुषों की मृत्यु पर शोक-सभा करना जनता का एक प्रधान कर्त्तव्य है।

कभी-कभी लोगों को अपने किसी घनिष्ठ मित्र के नाम किसी व्यक्ति को परिचय-पत्र देना पड़ता है। यह परिचय-पत्र तब तक न दिया जावे जब तक लिखने-वाले को यह मालूम न हो कि जिस व्यक्ति को परिचय-पत्र दिया जाता है उससे लेखक का घनिष्ठ मित्र अप्रसन्न तो नहीं है। साथ ही पत्र देने-वाले

को यह जान लेना चाहिये कि अनुग्रहीत व्यक्ति परिचय-पत्र का पात्र है या नहीं।

गुण-कथन और चापलूसी के अन्तर पर ध्यान रखने की आवश्यकता है। यद्यपि असाधारण गुण-कथन में चापलूसी का थोड़ा-बहुत आभास अवश्य रहता है; तथापि उसमें स्वार्थ सिद्ध करने की नीच और कपट-मय प्रवृत्ति नहीं रहती। नीति की सूक्ष्म दृष्टि से साधारण गुण-कथन में भी चापलूसी दीखती है, तथापि शिष्टाचार के विचार से उसकी अल्प मात्रा क्षमा के योग्य है।

(६) पहुनई और अतिथि-सत्कार में

लोगों को अपने ऐसे मित्रों और नातेदारों के यहाँ कभी-कभी जाकर कुछ दिन रहने का काम पड़ता है, जो किसी दूसरे स्थान में रहते हैं। कभी तो पहुनई का अवसर ही आ जाता है और कभी यह अवकाश के समय इच्छा से की जाती है। मित्र और नातेदारों के यहाँ से बहुधा पहुनई के लिए निमन्त्रण भी आ जाता है। जो कुछ हो, पहुनई में जाने के पूर्व इस बात का मन में विश्वास अवश्य कर लेना चाहिए कि जिनके यहाँ पहुनई में जाना है उनकी इसके लिए हार्दिक इच्छा है या नहीं, क्योंकि कभी-कभी पहुनई के लिए केवल शिष्टाचार की ऊपरी दृष्टि से अनुरोध किया जाता है।

जिसके यहाँ पहुनई में जाना है उसकी आर्थिक और कौटुम्बिक परिस्थिति पर ध्यान अवश्य रखना चाहिये। यदि उसकी स्थिति साधारण हो अथवा उसके यहाँ कुटुम्ब की अधिकता के कारण अथवा और किसी कारण से रसोई बनाने की कुछ अड़चन है तो उसके यहाँ चार-छः दिन से अधिक न ठहरना चाहिये। मित्र के यहाँ पहुँचने पर पाहुने को किसी न किसी तरह यह बात

प्रकट कर देना चाहिये कि वह कितने दिन तक ठहरने-वाला है, जिससे गृह-स्वामी को उसके आदर-सत्कार का प्रबंध करने के लिए अवसर मिल जावे। पाहुने को अपनी प्रस्तावित अवधि से अधिक न ठहरना चाहिये, जब तक इसके लिए गृह-स्वामी की ओर से विशेष आग्रह न हो। आतिथेय के यहाँ रहते हुए, पाहुने को भोजन के निश्चित समय पर उपस्थित रहना आवश्यक है जिसमें घरवालों को उसके लिये अनावश्यक प्रतीक्षा न करनी पड़े। दूसरे के यहाँ जो भोजन बने उसे संतोष-पूर्वक पाना चाहिये, चाहे वह पाहुने की रुचि के अनुकूल न हो। यदि तुम्हें किसी वस्तु-विशेष से अरुचि हो अथवा विकार होने की संभावना हो तो रसोई करने-वाले के पास तुम्हें इस बात की सूचना नम्रता-पूर्वक पहुँचा देनी चाहिये। इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि भोजन परिमाण से अधिक न पाया जावे और न कम भी किया जावे।

जिसके यहाँ पहुनई में जाना हो उसके लड़के-बच्चों के लिए मिठाई, खिलौने अथवा टोपी, रूमाल आदि ले जाना बहुत आवश्यक है। पहुनई समाप्त कर घर को लौटते समय लड़के-बच्चों को योग्यतानुर दो-एक रुपये दे देना किसी प्रकार अनुचित नहीं है। गृह-स्वामी के नौकर-चाकरों और रसोइये को भी कुछ मामूली रकम पुरस्कार में दी जावे। पहुनई की अवधि में मनुष्य को इस बात की सावधानी रखनी चाहिये कि उसका ऊपरी खर्च गृह-स्वामी को न देना पड़े। पाहुने को यह भी उचित नहीं है कि वह किसी बाहरी आदमी को अपने साथ गृह-स्वामी के यहाँ भोजन करने को लावे। यदि पहुनई की अवधि में कोई दूसरा मित्र पाहुने का निमन्त्रण करे तो उसे वह स्वीकार करने के पूर्व गृह-स्वामी से इस के लिए अनुमति ले लेना चाहिये; और यदि इससे उसको कुछ खेद हो तो पाहुने को वह

निमन्त्रण उस समय स्वीकृत नहीं करना चाहिये। कभी-कभी ऐसा होता है कि गृह-स्वामी किसी दूसरी जगह निमन्त्रित किया जाता है और उसके साथ शिष्टाचार-वश पाहुने को भी निमन्त्रण दिया जाता है। ऐसी अवस्था में पाहुने को अधिकार है कि वह उस निमन्त्रण को स्वीकार करे अथवा न करे। तो भी अस्वीकृति इस प्रकार की जावे कि निमन्त्रण देने-वाले को बुरा न लगे।

कभी-कभी पहुनई कुटुम्ब-सहित की जाती है। इस अवस्था में पाहुने के घर के लोगों को रसोई-कार्य में गृह-स्वामिनी की पूरी सहायता करनी चाहिये। पाहुनी को गृह-स्वामिनी के साथ ऐसी चर्चा चलाना उचित नहीं जिसमें परस्पर मन-मुटाव हो जाने की आशंका हो। गृह-स्वामिनी की अवस्था और सम्बन्ध के विचार से पाहुनी को आते और जाते समय उसका भेंट आदि से उचित सत्कार करना चाहिये। यदि गृह-स्वामिनी किसी भले घर की स्त्रियों के यहाँ बैठने जावे और पाहुनी से भी साथ चलने के लिये आग्रह करे तो कोई विशेष कारण न होने पर उसे गृह-स्वामिनी के साथ जाना चाहिये। इसी प्रकार पाहुना भी गृह-स्वामी के साथ उसके मित्रों के यहाँ बैठने को जा सकता है।

जितने समय तक पाहुना अपने मित्र या सम्बन्धी के घर पर रहे उतने समय तक उसे बहुधा उसी कोठे या स्थान में रहना चाहिये जो उसके लिए नियत किया गया हो। यदि उसका सम्बन्ध ऐसा हो कि वह स्त्रियों के पास भी आ जा सकता हो तो सूचना देकर वह घर के भीतर भी अपना कुछ समय बिता सकता है। यदि ऐसा न हो तो उसे आवश्यकता पड़ने पर और सूचना देने पर ही घर के भीतरी भाग में जाना चाहिये। आते-जाते समय सभ्यता-पूर्वक थोड़ा बहुत खाँस देने से स्त्रियों को पुरुषों की

उपस्थिति की सूचना मिल सकती है। इस संकेत का उपयोग उस समय भी किया जा सकता है जब स्त्रियाँ घर के किसी भीतरी भाग में भी बैठी हों। स्त्रियों के बीच में अचानक पहुँच जाना और उनको अपनी मर्यादा का पालन करने के लिए अवसर न देना असभ्यता के चिह्न हैं।

पाहुने का उचित सत्कार करने की ओर गृह-स्वामी को विशेष ध्यान देना चाहिये। यथा-सम्भव वह पाहुने के साथ बैठकर भोजन करे और यदि पाहुना बाहर गया हो तो भोजन के लिए उसकी प्रतीक्षा करे। मुख्य-भोजनों के पूर्व पाहुने के लिए जल-पान का प्रबन्ध कराना भी आवश्यक है। भोजन समय-समय पर हेर-फेर के साथ तैयार कराया जावे और जहाँ तक हो वह पाहुने की स्थिति के अनुरूप हो। भोजन स्वच्छ पात्रों में और उचित परिमाण में परसा जावे। पाहुने से, भोजन करते समय, कुछ अधिक भोजन के लिए थोड़ा-बहुत अनुरोध करना अनुचित नहीं है, परन्तु परिमाण से अधिक परसना अथवा खिलाना निन्दनीय है।

पाहुने के आगमन के समय उसका आदर-सहित स्वागत करना चाहिये और यदि उसके आने के निश्चित समय की सूचना मिल जावे तो उसे स्टेशन से अथवा घर से बाहर कुछ दूरी पर लेने के लिए जाना चाहिये। इसी प्रकार पाहुने की विदाई के समय भी उसके साथ कुछ दूर जाकर आदर-सत्कार की त्रुटियों के लिए क्षमा माँगनी चाहिये।

पाहुने को उचित है कि वह अपने घर पहुँचने पर आतिथेय को अपनी क्षेम-कुशल का पत्र भेजे और कुछ समय तक पत्र-व्यवहार जारी रक्खे जिसमें गृह-स्वामी की ओर उसकी कृतज्ञता प्रकट होवे। उसे यह भी उचित है कि आगे चलकर किसी

उपयुक्त समय पर वह अपने उस मित्र को अपने घर उसी प्रकार पहुनई करने के लिए निमन्त्रण दे जिस प्रकार उसने उसे दिया था।

(७) शारीरिक शुद्धि में

शारीरिक शुद्धि केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से ही नहीं; किन्तु शिष्टाचार की दृष्टि से भी आवश्यक है। आजकल पढ़े-लिखे लोगों में बहुत-सी ऐसी बातों का विचार किया जाता है जिन पर अपढ़ लोग विशेष ध्यान नहीं देते। उदाहरणार्थ, बाल बनवाने के ही प्रश्न को लीजिये। अपढ़ लोग बहुधा एक पखवाड़े तक हजामत नहीं बनवाते; परन्तु शिक्षित लोग सप्ताह में कम से कम दो बार अवश्य बाल बनवाते हैं। जेन्टल-मैनों के बाल तो प्रायः प्रति-दिन बनाये जाते हैं और यदि नाई न मिले तो वे अपने ही हाथ से हजामत कर लेते हैं। इसी प्रकार लोगों को नख कटवाने का अथवा अपने हाथ से काटने का ध्यान रखना चाहिये। नख बढ़ जाने पर उनके सिरों पर मैल का जो कालापन आ जाता है वह घृणित दिखाई देता है। नखों को दांतों से कभी न काटना चाहिये और दूसरों के सामने तो यह काम कभी न किया जावे। नाक के भीतर के बाल भी समय-समय पर कटवा लिये जावें जिसमें वे अपनी बाढ़ से कुडौलपन की बढ़ती न करें। जो लोग सिर के बाल बड़े-बड़े रखना पसंद नहीं करते उन्हें समय-समय पर अपने बाल छोटे करा लेना चाहिए।

दांतों और जीभ तथा आँखों और कानों की स्वच्छता पर भी विशेष ध्यान दिया जावे। जो लोग लहसुन और प्याज खाते हैं अथवा जिन्हें तमाखू खाने, बीड़ी पीने अथवा और किसी दुर्गंध-कारी व्यसन की आदत हो उन्हें दूसरों से बात-चीत

करने के पूर्व लौंग, इलायची, जायपत्री अथवा कबाबचिनी से अपने मुख की दुर्गंध दूर कर लेना चाहिये। यदि किसी समय ये साधन उपलब्ध न हों तो केवल कुल्ले ही से काम चला लिया जाय। किसी-किसी की यह आदत होती है कि वे बहुधा मुँहासे फोड़ा करते हैं अथवा बार-बार नाक में अंगुली डालकर उसे साफ़ करते रहते हैं। ये काम स्वयं घृणित हैं और दूसरे लोगों के सामने इनकी घृणा और भी बढ़ जाती है।

लोगों को चाहिये कि हाथों को सदैव शुद्ध रक्खें। यह बात उस समय और भी आवश्यक है जब किसी से हाथ मिलाने का अथवा किसी को छूने का काम पड़े। कुछ लोग कागज़ या पुस्तक के पन्ने अथवा ताश सरकाने के लिए अंगुली को मुख-रस से अपवित्र करते हैं और उससे अपवित्र की हुई वस्तु दूसरे को दे देते हैं। यह क्रिया बहुत ही अनुचित है। कई लोग डाक-टिकट को भी जीभ से गीला करके चिपकाते हैं। यह कार्य और दृश्य बहुत ही घृणित हैं। यदि इन कामों के लिये समय पर पानी न मिले तो सिर के पसीने से काम लिया जा सकता है जो उस घृणित द्रव्यपदार्थ से कहीं अच्छा है।

जिन लोगों को कोई चर्म-रोग हो उन्हें दूसरों को छूने अथवा अपने हाथ से उन्हें कोई चीज़ देने में सदैव सावधान रहना चाहिये। जूठे हाथों किसी को छूना उचित नहीं है। अशौच की अवस्था में भी कम-से-कम हाथ धोये बिना किसी को छूना अशिष्ट समझा जाता है। जिन लोगों में छुआ-छूत का विचार रहता है उनकी खाने-पीने की वस्तु अथवा पात्र और कपड़े आदि भी न छूना चाहिये।

शरीर के खुले हुए भागों को सदैव मैल से मुक्त रखना चाहिये जिससे उन्हें देखने में किसी को घृणा न हो। पान,

तमाखू आदि इतने परिमाण में न खाये जांय कि उनका रस मुख के बाहर बह निकले। नास सूंघने-वालों को नाक का अग्र-भाग स्वच्छ रखना चाहिये जिसमें वहाँ पर उसकी पपड़ी सी जमी हुई न दिखाई दे। यदि कोई विशेष अड़चन न हो तो मनुष्य को शरीर-शुद्धि के लिए प्रति-दिन स्नान करने की आवश्यकता है। जो लोग उपवीत धारण करते हैं उन्हें इसको स्वच्छ रखने पर विशेष ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि यह मैल के कारण थोड़े ही दिनों में काला पड़ जाता है।

किसी के जूठे पात्र से जल पीना अथवा उसमें भोजन करना अशिष्टता है। कभी-कभी इस बात का प्रतिबन्ध स्वास्थ्य की दृष्टि से भी आवश्यक है। जल पीकर अथवा भोजन करके अपना जूठा पात्र नौकर के सिवा और किसी को देना या छुलाना असभ्यता का चिह्न है। ऐसे पात्रों को थोड़ा-बहुत धोकर लौटाना चाहिये। हाथ या मुँह पोंछने के लिए दूसरे को अपने व्यवहार का मैला अथवा पुराना कपड़ा देना उचित नहीं।

जहाँ कई लोग इकट्ठे बैठे हों वहाँ पास ही नाक साफ करना, थूकना या खखारना उचित नहीं है। लोगों की दृष्टि के सामने दांत या जीभ साफ करना अनुचित है। बार-बार नाक सुरकने का शब्द भी अनुचित समझा जाता है। इसी प्रकार बार-बार थूकना अथवा बार-बार कान या आँखें साफ करना भी अशिष्टता है।

(८) शारीरिक क्रियाओं में

बातचीत करते समय आवश्यकता से अधिक हाथ चलाना अथवा दूसरे हाव-भाव करना अच्छा नहीं समझा जाता। कई लोग जितना बोलते नहीं हैं उतना हाथ अथवा सिर हिलाकर हाव-भाव प्रकट करते हैं। कई लोगों को मुँह, आँखें और भौंहें

हिलाने का इतना अभ्यास रहता है कि वे आधा विचार एक अधूरे वाक्य में और शेष भाग अभिनय के द्वारा प्रकट करते हैं। कोई-कोई तो एक विचार के प्रकट करने में शरीर को सिर से पैर तक चलायमान कर देते हैं।

जोर-जोर से हँसना उचित नहीं। कभी-कभी ऐसा अवसर आ जाता है कि लोग किसी विनोद के वशीभूत होकर अट्टहास करते हैं अथवा आनन्द में आकर नाच उठते हैं; परन्तु ये सब चरम अवस्थाएँ हैं। साधारण रीति से, गम्भीर मनुष्य अट्टहास का काम सामान्य हँसी से और सामान्य हँसी का काम मुस्कराहट से लेते हैं; तथापि यह आवश्यक नहीं कि कोई सदैव गम्भीर, रूखो, अथवा उदास मुद्रा बनाये रक्खे। हँस-हँस-कर बातचीत करना अथवा आधी बात कहकर आपही बहुत हँसना असभ्य समझा जाता है। बड़े लोगों के सामने अनुचित हँसी को रोकना बहुत आवश्यक है। जहाँ तक हो पुरुषों को कठिन से कठिन दुःख में भी रोना अथवा बहुत विलाप करना उचित नहीं है। यद्यपि हृदय का दुःख कभी-कभी बिना रोये शान्त नहीं होता, तथापि पुरुषों को अत्यन्त धैर्य धारण करना चाहिये। किसी-किसी जाति में स्त्रियाँ अपने सम्बन्धियों से मिलने पर भेंट करती हुई जोर-जोर से रोती हैं, पर ऐसा करना उचित नहीं। स्त्रियों को बाजार में या सड़क पर अपनी नातेदारिनों से भेंट करते समय कभी न रोना चाहिये।

कई लोग बहुधा धन, पदवी अथवा विद्या के अभिमान में हाथ जोड़कर किये गये प्रणाम का उत्तर केवल सिर हिलाकर या एक हाथ उठाकर देते हैं। ऐसा करना शिष्टाचार के विरुद्ध है। कोई-कोई लोग केवल मुख से ही प्रणाम का उत्तर दे देते हैं और हाथ से कुछ भी संकेत नहीं करते। कुछ लोग हाथ न मुँह से ही प्रणाम या नमस्कार कहते हैं। ऐसे

लोगों को उन्हीं की रीति के अनुसार उत्तर देना अनुचित नहीं है। कुछ लोग ऐसे भी पाये जाते हैं जो अँगरेज़ों की नक़ल करके केवल एक अँगुली उठाकर प्रणाम का उत्तर देते हैं; ऐसा करना भी अशिष्टता है। कई लोग मुसलमानों की देखा-देखी आवश्यकता से अधिक झुककर और हाथ को कई बार माथे तक ले जाकर प्रणाम करते हैं। यह क्रिया हिन्दुस्थानी शिष्टाचार की गम्भीरता के विरुद्ध और बनावटी समझी जाती है। ऊँचे पदाधिकारियों को अवश्य ही उनकी मर्यादा के अनुसार नम्रतापूर्वक प्रणाम करना चाहिये। जब तक विशेष परिचय अथवा प्रेम-भाव न हो तब तक किसी से बहुत दूरी पर रहकर प्रणाम न किया जावे। जो लोग मूक प्रणाम करते हैं उन्हें उसी रीति से उत्तर देना आवश्यक है।

कसरती लोग बहुधा अकड़कर या झूमकर चलते हैं; पर उनका यह कार्य शिष्टाचार के अनुकूल नहीं माना जा सकता। दुबले-पतले और बूढ़े आदमियों का इस प्रकार चलना तो उपहास के योग्य है। कई लोग हाथ-पाँव फटकार कर ऐसी विचित्र चाल चलते हैं जिसे देखकर लोगों को हँसी आ जाती है। बहुधा किसी एक चाल से चलने का अभ्यास कुछ समय में ऐसा पक्का हो जाता है कि वह कठिनाई से छूटता है; इसलिए किसी को भी बनावटी चाल चलने की आदत न डालनी चाहिये। जहाँ तक हो चलने की रीति न बिलकुल धीमी हो और न बिलकुल सपाटे की। लोगों को सदैव अपने बाँये हाथ की ओर चलना चाहिये और अपने को दूसरे के तथा दूसरों को अपने धक्के से बचाना चाहिये।

जहाँ चार आदमी बैठे हों वहाँ पैर फैलाकर अथवा दूसरों की ओर पैर करके बैठना उचित नहीं। कुर्सी पर दोनों या एक पैर रखकर बैठना अथवा पैरों को नीचे रखकर उन्हें हिलाते

रहना अशिष्ट समझा जाता है। अधिक प्रतिष्ठित लोगों की बराबरी से बिना उनकी इच्छा के न बैठना चाहिये। फर्श पर जूता पहिने अथवा मैले पाँव से बैठना ठीक नहीं।

किसी की ओर लगातार टकटकी लगाकर देखना अनुचित है। चलते समय लौट-लौटकर पीछे देखना या बार-बार दाँयें-बायें देखना उचित नहीं है। बातचीत करते समय सुनने-वाले की ओर देखकर बातचीत करनी चाहिये और उसकी बात सुनते समय भी वैसी ही दृष्टि रखनी चाहिये। जब कोई मनुष्य स्नान अथवा भोजन करता हो या कपड़े पहिनता हो, तब जहाँ तक हो सके, उसकी ओर आवश्यकता से अधिक दृष्टि न डाली जाय। कभी-कभी लोग परिचित लोगों से भी कारण-वशात् आँख बचाकर निकल जाते हैं, पर ऐसा बहुधा न किया जावे। किसी की ओर तिरछी दृष्टि से और यथा-सम्भव, क्रोध भरे नेत्रों से देखना उचित नहीं है। जिन लोगों की दृष्टि मंद होती है वे कभी-कभी दूसरों की ओर देखते हुए भी यथार्थ में उनको कुछ दूरी पर देख नहीं सकते; इसलिये यदि ऐसे लोग आँखें मिलाने पर भी कुछ न बोलें तो इसे उनका दोष न समझना चाहिये और स्वयं उनसे बातचीत आरम्भ कर देना चाहिये।

(९) स्वाभाविक क्रियाओं में

जँभाई लेते समय मुँह को हाथ से ढांक लेना चाहिये जिसमें दूसरों को बाये हुए मुँह का विचित्र दृश्य न देख पड़े और उस पर इस क्रिया का प्रभाव भी न पड़े। बड़े लोगों के जँभाई लेने पर चापलूस लोग बहुधा चुटकियाँ बजाते हैं। यद्यपि बड़े लोगों के सम्बन्ध से यह काम निन्दनीय समझा जाता है, तथापि छोटे बच्चों के जँभाई लेने पर चुटकियाँ बजाना बहुत आवश्यक है; क्योंकि इससे उनका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित होने पर

जँभाई के पश्चात् उनके जबड़े यथा-स्थान मिल जाते हैं और वे दुर्घटना से रक्षा पा लेते हैं। जँभाई के समय मुँह को हथेली के द्वारा बंद करने से बड़ी उमर के लोग भी उस दुर्घटना से बच सकते हैं।

छींक आने पर लोगों को आस-पास बैठे हुए मनुष्यों से कुछ दूर हट जाना चाहिये अथवा अपना मुँह एक ओर फेर लेना चाहिये जिससे दूसरों पर अपवित्र छींटे न पड़ें। लगातार छींकें आने पर तो छींकने-वाले को अपने स्थान से उठ जाना अत्यन्त आवश्यक है। छींक चुकने के पश्चात् उसे अपना मुँह अच्छी तरह पोंछ लेना चाहिये। शिष्टाचार के फेर में पड़कर छींक को रोकना उचित नहीं; क्योंकि इससे स्वास्थ्य-सम्बन्धी हानि होने की सम्भावना है। यदि छींक आने पर नाक के आस-पास रूमाल लगा लिया जावे तो उससे दूसरों का बहुत कुछ बचाव हो सकता है।

अँगरेज़ों में दूसरे लोगों के सामने डकार लेना परम घृणित समझा जाता है। यद्यपि हिन्दुस्थानी समाज में इस क्रिया को उतनी घृणा की दृष्टि से नहीं देखते; तथापि इसे थोड़ा बहुत अशिष्ट अवश्य समझते हैं। स्वयं डकार बुरी वस्तु नहीं है और उससे डकार लेने-वाले को स्वास्थ्य-सम्बन्धी लाभ भी होता है, पर उससे जो दुर्गंध सी फैलती है वह दूसरों के लिए हानिकारक है। जँभाई के समान डकार लेने में भी हाथ का उपयोग किया जा सकता है और उससे दुर्गन्ध का निवारण हो सकता है जो बात डकार के सम्बन्ध में कही गई है वही कुछ हेर-फेर के साथ हिचकी के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

खाँसते समय मुँह पर हाथ लगा लेना चाहिये जिससे पास बैठे हुए लोगों को किसी प्रकार असुविधा न हो। सभा-समाज

में यदि खाँसी कुछ उग्र-रूप धारण करे और साधारण से अधिक समय तक चले तो खाँसने-वाले को वहाँ से उठ आना चाहिये जिससे दूसरों के कार्य में विघ्न न हो। खाँसी बहुधा ऐसा रोग है कि किसी एक का खाँसना सुनकर आस-पास बैठे हुए लोग भी खाँसने लगते हैं और इस सम्मिलित कोलाहल से दूसरे लोगों के काम-काज में अथवा सभा-समाजों के कार्य में बाधा आ जाती है; इसलिये जिसे खाँसी की कुछ भी शिकायत हो उसे ऐसे अवसर पर भुँजी हुई लौंगों का उपयोग करना चाहिये जिससे खाँसी कुछ शान्त हो जाती है।

—:*:—

छठा अध्याय

विशेष शिष्टाचार

(१) स्त्रियों के प्रति

हिन्दुस्थानी समाज में स्त्रियों और पुरुषों का बहुधा वैसा स्वतन्त्र और परस्पर व्यवहार नहीं होता जैसा अँगरेजों के समाज में अथवा पर्दा-प्रणाली का पालन न करने-वाली अन्य भारतीय समाजों में होता है। हम लोगों के समाज में जहाँ तक होता है पुरुष स्त्रियों के किसी भी काम-काज अथवा सम्मेलन में शामिल नहीं होते; इसलिये हिन्दुस्थानी लोगों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वे बिना आज्ञा, अनुमति अथवा सूचना के स्त्रियों की मण्डली में न जावें। परिचित स्त्री से भी बिना विशेष कारण के अधिक बातचीत करना अनुचित है। यदि बड़ी आवश्यकता हो और उस स्त्री के साथ कोई वयोवृद्ध संगिनी हो तो आवश्यक बातचीत कर ली जा सकती है। एकान्त स्थान में किसी अकेली तरुण स्त्री के पास उचित कारण के बिना ठहरना अथवा उससे बातचीत करना अनुचित है। स्त्रियों से सड़क पर सम्भवतः कभी बातचीत न की जावे।

संकट में पड़ी हुई स्त्रियों को बचाना केवल शिष्टाचार ही का कार्य नहीं; किन्तु वीरता (सदाचार) का भी कार्य है। यदि कोई लुच्चा या गुंडा किसी सभ्य स्त्री के साथ छेड़-छाड़ करता हो तो मनुष्य कहलाने-वाले प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह शक्ति-भर उसे बचाने और अत्याचारी को दण्ड देने या दिलवाने का प्रयत्न करे। राजपूतकाल में तो वीर लोग स्त्रियों

की रक्षा के लिए प्राण तक दे देते थे, पर दुर्भाग्य-वश अब वह समय दिखाई नहीं देता।

स्त्रियों से जहाँ तक हो नम्रता का व्यवहार किया जावे। उनके प्रति क्रोध प्रकट करना अथवा दिल दुखाने-वाली कोई बात कहना अनुचित है। उनकी भूलें धीरता से सुधार दी जावें और आगे-पीछे बिना किसी विशेष कारण के उन भूलों का उल्लेख न किया जावे। उनकी उचित सम्मति को मान देना चाहिये और महत्व-पूर्ण विषयों में उनकी सम्मति लेनी चाहिये। जहाँ तक हो घर का भीतरी प्रबन्ध स्त्रियों ही को सौंप दिया जावे और उनके कार्यों में व्यर्थ हस्तक्षेप न किया जावे।

यदि मार्ग में कोई स्त्री सामने से आती हो तो उसके लिए मार्ग छोड़ देना उचित है। अनजान स्त्रियों के पीछे-पीछे अथवा उनकी बराबरी से चलना भी अनुचित है। किसी प्रमुख स्थान में बैठकर रास्ते में आने-जाने-वाली स्त्रियों की ओर देखते रहना अशिष्टता है। जिन मेलों में बहुधा स्त्रियाँ ही जाती हैं उनमें पुरुषों को बिना किसी विशेष आवश्यकता के न जाना चाहिए। इसी प्रकार जिस घाट पर स्त्रियां नहाती हों वहाँ जाना अथवा एक ओर खड़े होकर उनकी तरफ देखना पुरुषों के लिए अनुचित है। सवारियों में भी पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि जहाँ तक हो सके वे स्त्रियों के लिए आवश्यकता पड़ने पर जगह खाली कर दें।

(२) बड़ों और बूढ़ों के प्रति

छोटों का कर्त्तव्य है कि वे अपने से बड़े और बूढ़े लोगों की उचित आज्ञा का पालन करें, चाहे वे किसी भी जाति अथवा स्थिति के क्यों न हों। यदि वे लोग सभ्यता-पूर्वक किसी कार्य

में छोटों से सहायता माँगे तो इन्हें यथा-सम्भव उनकी सहायता करनी चाहिये। बड़े और बूढ़े लोगों का उचित आदर किया जाय और उनसे आवश्यक कार्यों में सम्मति ली जावे। अपने से अधिक उमर-वाले परिचित लोगों से भेंट होने पर प्रणाम करना चाहिए और यदि वे कुछ पूछें तो सभ्यतापूर्वक उनकी बात का उत्तर देना चाहिये।

गुरु के प्रति विद्यार्थी को सदैव नम्रता और आदर का भाव प्रकट करना चाहिए। जब तक कोई संदिग्ध अवस्था उपस्थित न हो, तब तक गुरु की आज्ञा टालना अनुचित है। गुरु से जितने बार भेंट हो, उतने ही बार आदर-पूर्वक प्रणाम करने में कोई हानि नहीं है। गुरु से व्यर्थ वाद-विवाद अथवा मुँह-जोरी करना विद्यार्थी के लिए निन्दा का विषय है। पाठशाला-सम्बन्धी कार्यों में गुरु की आज्ञा न मानना अपने कर्त्तव्य को भूलना है। विद्यार्थी बहुधा पाठशाला में दिया हुआ शिक्षा-सम्बन्धी कार्य न करने पर भूल जाने का बहाना करते हैं, पर यह काम समझदार विद्यार्थियों के लिए बहुत ही अनुचित है। गुरु के सामने पोशाक अथवा बातचीत में असाधारणता दिखलाना उचित नहीं। कई-एक विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थियों के सामने शिक्षक की कई-एक बातों की नकल करके विनोद किया करते हैं, पर यह काम अशिष्टता का है। जहां तक हो विद्यार्थी का कर्त्तव्य है कि वह आवश्यकता पड़ने पर अपने शिक्षक को शक्ति भर उचित सहायता देने में कमी न करे।

बड़ी उमर-वालों के सामने छोटों के लिए बढ़-बढ़-कर बातें करना अथवा गप्पें हाँकना उचित नहीं है। उनसे बातचीत करते समय स्थिति के अनुसार "आप" शब्द का उपयोग किया जाय। बड़ों और बूढ़ों के उचित कारण से अप्रसन्न होने पर छोटों को अपनी उद्दण्डता से उन्हें और भी अप्रसन्न न करना

चाहिए। उन लोगों से अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगने में कोई लज्जा की बात नहीं।

बूढ़े लोगों का कभी उपहास न किया जावे। कोई-कोई मूर्ख लड़के बड़ों और बूढ़ों को चिढ़ाने में अपना गौरव-सा समझते हैं, पर वे यह नहीं जानते कि एक दिन उनकी भी वैसी दशा होगी और दूसरे लोग उन्हें चिढ़ायँगे। लोगों की असभ्यता से कष्ट पाकर ही बूढ़े लोग कुछ चिड़-चिड़े हो जाते हैं। बड़ों और बूढ़ों से मुँह-जोरी करना भी अशिष्टता का चिह्न है।

भीड़-मेलों में बूढ़ों की रक्षा करना तरुण पुरुषों का कर्त्तव्य है। यदि कोई बूढ़ों के प्रति अनुचित वर्ताव करता हो तो दूसरों को उचित है कि वे उस उपद्रवी का दमन करें। यदि आवश्यकता हो तो बूढ़ों को हाथ पकड़कर मार्ग दिखाना चाहिए और उनका सामान आदि ले जाने में भी सहायता देनी चाहिए।

बड़ों और बूढ़ों से वाद-विवाद करना उचित नहीं समझा जाता। यदि उनकी कही हुई बात सुनने वाले को स्वीकृत अथवा प्रिय न हो तो उसे चुप हो जाना उचित है। यदि कोई विशेष हानि न हो तो बूढ़े लोगों के मत का खण्डन न किया जावे। यदि इसका प्रसङ्ग आजावे तो बहुत ही नम्रता-पूर्वक खण्डन किया जावे। कभी-कभी बूढ़े मनुष्य ही आपस में अनुचित व्यवहार करते हैं और अवस्था के गुण के कारण एक दूसरे की बात मानने में अपनी हीनता समझते हैं। ऐसी अवस्था में किसी योग्य तरुण पुरुष को बीच में पड़कर उनका समझौता करा देने की आवश्यकता है। बूढ़े मनुष्य अपने अपमान को सहसा भूलते नहीं हैं और समय पड़ने पर बहुधा उसका बदला लेने का प्रयत्न करते हैं; इसलिए बूढ़े मनुष्यों को अपने समवयस्क सज्जन के साथ भलमनसाहत का व्यवहार

करना चाहिये। यथार्थ में दो बूढ़े लोगों का आपस में कुछ कहना-सुनना निन्दनीय विषय है।

(३) छोटों के प्रति

छोटी अवस्था वालों के प्रति बड़ों का व्यवहार सहानुभूति-पूर्ण होना चाहिये। जब तक छोटे, परन्तु समझदार लोग जान बूझकर कोई अपराध न करें तब तक बड़ों को उन्हें शान्ति-पूर्वक क्षमा कर देनी चाहिये। बिना किसी विशेष कारण के बड़े लोगों को छोटों के प्रति क्रोध अथवा तिरस्कार प्रकट करना उचित नहीं है। छोटों के कार्यों में बड़ों को सदैव सहायता देने के लिए तैयार रहना चाहिये।

छोटों के प्रणाम का उत्तर प्रेम-पूर्वक और उचित रीति से दिया जावे। छोटी उमर-वाले प्रार्थना अथवा परामर्श के रूप में जो कुछ करना चाहें उसे उदारता-पूर्वक सुनना उचित है। यदि छोटे लोग किसी कुसंग में पड़े हों अथवा किसी कुकर्म में प्रवृत्त हों तो बड़ों का यह काम है कि वे लोग उन्हें बिगड़ने से बचाने का उपाय करें। ऐसे लोगों को एकान्त में परामर्श देना उचित है।

नवयुवक बहुधा बातचीत, पोशाक और चाल-ढाल में कुछ बनावट प्रकट करते हैं। कुछ सीमा तक यह प्रवृत्ति उचित है, परन्तु अधिक होने पर उसे रोकने की आवश्यकता है। जिस समय छोटी उमर-वाले किसी आवेश में आकर कुछ अनुचित बातचीत करने लगें उस समय उनको किसी न किसी प्रकार से शान्त करना आवश्यक है और फिर किसी दूसरे समय उनसे अनुचित बातचीत के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत असंतोष प्रकट करना चाहिये।

यदि किसी परिचित व्यक्ति का लड़का कुछ अनुचित कार्य करता हुआ पाया जावे तो उसे इस आशा पर ही रोकना चाहिये कि उसका पिता दूसरे के हस्तक्षेप करने से अप्रसन्न न होगा। यद्यपि कोई भी विचारवान् मनुष्य किसी नवयुवक को गड्ढे में गिरते देखकर चुप नहीं रह सकता; तथापि उसे बिना सोचे-विचारे, दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप करना उचित नहीं, क्योंकि कई-एक पिता दूसरे के द्वारा की गई अपने लड़कों की निन्दा सुनना पसन्द नहीं करते। ऐसी अवस्था में छोटे लड़कों की शिकायत उनके पिताओं से करने में भी बड़ी सावधानी रखना चाहिये। बहुधा लड़के भी इस प्रकार निन्दा करने-वाले से अप्रसन्न हो जाते हैं और उसे अपना द्रोही समझने लगते हैं; इसलिये लड़कों की निन्दा को भी पर-निन्दा के समान त्याग देना चाहिये। खेद की बात है कि बड़े-लोगों की उदासीनता से कई-एक नवयुवकों का जीवन भ्रष्ट हो जाता है।

छोटे लड़के बहुधा खिलौने और मिठाई के लिए इच्छा और हठ किया करते हैं। यद्यपि उनकी इच्छा और हठ को सदैव मान देना अनुचित है, तथापि समय-समय पर इन वस्तुओं से उनका मनोरञ्जन करने की आवश्यकता है। माता-पिता तथा बड़े भाई-बहनों को घर के छोटे-छोटे लड़कों के साथ कभी-कभी उनके खेलों में भी शामिल होना चाहिये जिसमें उन्हें अपने बड़ों की सहानुभूति का अवसर मिले और अपने उचित कार्यों में साहस प्राप्त हो।

कई लोग दूसरों के लड़कों के सामने बहुधा उनके माता-पिता अथवा अन्य निकट सम्बन्धियों की निन्दा किया करते हैं। ऐसा करने से वे आगे-पीछे उन लड़कों की दृष्टि में हेय समझे जाते हैं और उनके माता-पिता भी उन निन्दकों को तिरस्करणीय समझने लगते हैं। जो लड़के गम्भीर नहीं होते वे उस अपमान

का ध्यान रखकर भविष्य में समर्थ होने पर उसका बदला लेने का प्रयत्न करते हैं; इसलिये पर-निन्दकों को कम-से-कम लड़कों के सामने उनके सम्बन्धियों की निन्दा से विरत रहना चाहिये।

यहाँ विद्यार्थियों के प्रति शिक्षकों की ओर से होने-वाले व्यवहार पर भी विचार कर लेना उचित होगा। बहुधा शिक्षक विद्यार्थियों से अपने घर का काम-काज कराते हैं जिसके विरुद्ध शिष्य-गण संकोच-वश कुछ नहीं कह सकते। कभी-कभी वे अपने कुछ विद्यार्थियों को इसलिये दण्ड देते हैं कि ऐसा करने से उन्हें लड़कों को घर पर पढ़ाने का अवसर मिल जाय। इस प्रकार के कार्य अत्यन्त निन्दनीय हैं। क्रोध में आकर अथवा बालकों की किसी भूल से अचानक अप्रसन्न होकर उन्हें अनुचित दण्ड देना अशिष्टता है। बालकों की उचित जिज्ञासा का उत्तर न देना अथवा अपने अज्ञान को कपट से छिपाकर कुछ-का-कुछ बता देना शिक्षक के लिये बड़ा ही निन्दा की बात है। विद्यार्थियों को उनकी मूर्खता के कारण बार-बार लज्जित करना अथवा उनसे व्यंग-पूर्वक बोलना असभ्यता का चिह्न है। लड़कों से उनके घर की बातें न पूछी जावें और न उनके द्वारा किसी प्रकार का अस्पष्ट सँदेसा भेजा जावे। पाठशाला के मुख्य अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह इन सब दोषों को दूर करने का प्रयत्न करे।

(४) दीनों और रोगियों के प्रति

दीनों को सताना केवल शिष्टाचार ही के विरुद्ध नहीं; किन्तु धर्म और नीति के भी विरुद्ध है। ऐसे मनुष्य को पीड़ा पहुँचाना, जो किसी प्रकार बदला नहीं ले सकता, मनुष्यता के विपरीत है। दीन मनुष्य के सामने ऐसा कोई काम करना अथवा बात निकालना जिससे उसे अपनी हीनावस्था पर मार्मिक खेद होने

लगे, धनवानों के लिए उचित नहीं है। दीनों को तिरस्कार की दृष्टि से देखना अथवा जान-बूझकर उनका अपमान करना असभ्यता का चिह्न है। यदि कोई दीन-दुखी भिक्षा माँगने आवे और वह दान का पात्र हो तो उसे अवश्य कुछ-न-कुछ भिक्षा में देना चाहिये। उससे किसी प्रकार के कटु शब्द कहना या उसे धुतकारना बड़प्पन के विपरीत है। महाजनों को भी उचित है कि वे दीन-दुखियों को ऋण पटाने के लिए अनुचित कष्ट न देवें और उनका अपमान न करें।

यदि कोई मनुष्य किसी शारीरिक अवयव से हीन हो तो उसकी हँसी उड़ाना अथवा बिना कारण के उसकी उस अवयव-हीनता का उल्लेख करना असभ्यता है। अपांग मनुष्यों का तिरस्कार करना अथवा किसी अवयव की हीनता के कारण उनका वैसा नाम रखना अनुचित है। शरीर के अप्रिय रंग के कारण भी किसी का अपमान न किया जावे। धनाभाव के कारण जो लोग स्वच्छ वस्त्र नहीं पहिन सकते अथवा बालों को स्वच्छ नहीं रख सकते उनसे भी घृणा न की जावे। गरीब आदमियों के लड़के-बच्चों की ओर भी घृणा-भाव न दिखाया जावे। दरिद्रता ऐसा पाप नहीं है कि उसके कारण मनुष्य दूसरे लोगों के साथ न बैठ सके। घर पर आये हुए दीन मनुष्य को भी उसके अनुरूप आदर के साथ बिठाना चाहिये और उससे सहानुभूति-पूर्ण बातचीत करनी चाहिये।

जो धनवान् लोग किसी विषम सङ्कट में ग्रसित हो जाते हैं वे भी एक प्रकार के दीन मनुष्य हैं। उनके संकट-ग्रस्त होने पर उन्हें किसी प्रकार का उपालम्भ देना अथवा उनके सङ्कट की ओर उदासीनता दिखाना उचित नहीं है। यदि किसी सच्चे मनुष्य ने हमारा कोई अपराध किया हो और वह सच्चे हृदय से दीन होकर हमसे क्षमा की प्रार्थना करे तो हमें सहर्ष उसे

क्षमा-प्रदान करना चाहिए। यदि उसका व्यवहार आगे सन्तोष-दायक रहे तो हमें किसी भी समय उसके पूर्व अपराध की चर्चा न करनी चाहिये। किसी दीन पर किये गये उपकार का भी कभी उल्लेख न किया जावे।

लूले, लँगड़े और अन्धे लोगों को सड़क पर मार्ग दिखाने की आवश्यकता हो, तो इस काम में उनकी सहायता करना प्रत्येक सभ्य और शिक्षित व्यक्ति का कर्तव्य है। सवारी में जाने-वाले लोगों को इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि उनके वाहनों से रास्ते में आने-जाने-वाले दीन-दुखियों को कष्ट न पहुँचे। किसी को अपने सुभीते के लिये ऐसे लोगों को अपने स्थान से हटाना उचित नहीं। कई लोग अपनी प्रभुता में मत्त होकर दीन-दुखियों के साथ निर्दयी व्यवहार करते हैं, परन्तु ऐसा करना महान् नीचता है। जो दीन-दुखी किसी के यहाँ काम-काज के लिए नौकर रखे जावें उनके साथ भी उदारता और शिष्टता का व्यवहार किया जावे।

धनवान् लोगों का यह कर्तव्य है कि वे अपने नगर अथवा ग्राम के दीन दुखियों की जीविका के लिए अपनी शक्ति के अनुसार कुछ प्रबन्ध अवश्य करें। जो बेकार लोग शरीर से सशक्त हैं उनको कुछ काम देना धनाढ्यों का कर्तव्य है। इन्हें अनाथ बच्चों के पालन-पोषण का भी प्रबंध करना चाहिये और जहाँ तक हो सके उनके लिए अनाथालय खोलना चाहिये।

जो कुछ यहाँ दीन-दुखियों के विषय में कहा गया है वही कुछ घटा-बढ़ाकर ग्रामीणों के विषय में भी कहा जा सकता है। नगर के रहने-वाले गाँव-वालों को बहुधा बिलकुल मूर्ख समझकर उनकी हँसी उड़ाते और उनका तिरस्कार करते हैं। शहर-वाले कभी-कभी यहाँ तक नीचता करते हैं कि वे ग्रामीण स्त्रियों तक

को हँसी उड़ाते हैं। हम लोग दूसरी जाति के लोगों के असभ्य व्यवहार की शिकायत करते हैं; पर यह नहीं सोचते कि हम लोग खुद अपने ही जाति-वालों के साथ इससे भी अधिक असभ्य व्यवहार कर रहे हैं।

परिचित अथवा अपरिचित रोगियों के यहाँ कभी-कभी जाना या उनकी सेवा-शुश्रूषा में सहायता देना प्रत्येक सभ्य व्यक्ति का कर्त्तव्य है। लोग बहुधा ऐसे समय में उन लोगों के यहाँ नहीं जाते जिनसे किसी प्रकार का परिचय नहीं है; तथापि अवसर मिलने पर ऐसे लोगों के यहाँ जाने में कोई संकोच न करना चाहिये। किसी की बीमारी की दशा में जो परिचित अथवा अपरिचित व्यक्ति आवे, उसके यहाँ रोगी मनुष्य को स्वास्थ्य-लाभ करने पर मिलने के लिए एक बार अवश्य जाना चाहिये। उसकी बीमारी अथवा किसी अन्य सङ्कट की अवस्था में भी उसके यहाँ एक-दो बार जाना आवश्यक है। बीमार मनुष्य को लोगों के आने से बहुधा धीरज बँधता है, इसलिये जब तक वैद्य न रोके, तब तक इस अवसर पर उसके पास एक-दो बार जाने की आवश्यकता है।

रोगी के पास जाकर ऐसी बात न निकालनी चाहिये, अथवा ऐसे प्रश्न न पूछना चाहिये जिसमें उसे अधिक बोलना पड़े। यदि कोई रोगी अपनी इच्छा ही से अधिक बात-चीत करे, तो भी उसे अधिक बोलने से धीरज-पूर्वक रोक देना उचित है। रोगी को कभी बीमारी की भयङ्करता न बताई जावे और न उसके सामने आवश्यकता होने पर भी उस वैद्य की निन्दा की जावे जो उस समय उसका इलाज कर रहा हो। यदि किसी को यह जान पड़े कि अमुक वैद्य की चिकित्सा विशेषतया हानिकारक है तो वह खूब सोच-समझकर अपना मत रोगी के किसी हितैषी को प्रकट कर देवे। सोते हुए रोगी

को जगाना बड़ी अशिष्टता है। रोगी के पास बैठकर उसके सामने किसी तरह की काना-फूसी न की जावे और न उसके रोग के सम्बन्ध में विवाद उपस्थित किया जावे। यदि तुम्हारे जाने के समय रोगी के पास वैद्य उपस्थित हो तो वैद्य से भी रोग के सम्बन्ध में कोई विशेष पूछ-ताछ करना अनुचित है।

रोगी को धीरज बँधाना बहुत आवश्यक है। उसे सदैव यह आशा दिलाई जावे कि रोग कुछ समय में अच्छा हो जावेगा। तो भी उससे पथ्य में सावधानी रखने के लिए अनुरोध करना अनुचित नहीं है। रोगी के पास जोर-जोर से बातें करना ठीक नहीं। वहाँ किसी ऐसे विषय पर भी बातचीत न की जावे जो रोगी को अप्रिय जान पड़े। रोग के सम्बन्ध में बात-चीत करते समय सत्य होने पर भी यह कभी न कहा जावे कि अमुक मनुष्य इस रोग से मर गया। रोगी के पास केवल उसी समय तक बैठना चाहिये जब तक उसके दवाई पीने का अथवा भोजन करने का समय न आवे।

यदि कोई परिचित रोगी किसी सार्वजनिक औषधालय में हो तो वहाँ भी उसकी खबर पूछने के लिए जाना उचित है। यदि आवश्यक हो तो उसके लिए दवाई लाने अथवा वैद्य को ला लाने में सहायता देनी चाहिये। रोगी मनुष्य को उठने-ठने अथवा करवट बदलने में सहायता देना प्रशंसनीय कार्य । अशक्त रोगी की नीच-से-नीच सेवा भी उच्च शिष्टाचार का लक्षण है।

जहाँ तक हो परिचित रोगी के पास रोग की अवस्था में एक बार से अधिक जाना आवश्यक है जिससे यह कार्य निरा शिष्टाचार न समझा जावे। कोई-कोई लोग सहानुभूति की प्रेरणा से नहीं, किन्तु निरे शिष्टाचार के अनुरोध से किसी रोगी

को देखने जाते हैं और एक बार जाकर ही अपने कर्त्तव्य की इति-श्री मान लेते हैं। इस प्रकार की उदासीनता शिष्टाचार और नीत दोनों के विरुद्ध है।

रोगी के पास जाकर ऐसे स्थान में न बैठना चाहिये कि जहाँ से हवा का आवागमन रुक जावे अथवा रोगी के कोठे में अँधेरा हो जावे। ऐसे स्थान में भी बैठना उचित नहीं, जहाँ रोगी सरलता से अपनी दृष्टि न डाल सके। कुशल पूछने के लिये जाने-वाले सज्जनों को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उनकी किसी भी क्रिया अथवा व्यवहार से रोगी को कष्ट न पहुँचे।

वैद्यों या डाक्टरों को रोगी के साथ बहुत ही शिष्ट व्यवहार करना चाहिये, क्योंकि उसपर उनकी प्रत्येक बात का बड़ा असर पड़ता है। कड़े और अनिश्चित दाम लेने-वाले वैद्य के भावी बिल के स्मरण-मात्र से ही साधारण स्थिति के रोगी का रोग दिन में कई बार बढ़ जाता है। इस पर उसकी उतावली और धमकियाँ तो प्रलय उत्पन्न कर देती हैं। केवल धन खींचने की आशा से औषधि की योजना करना और एक पैसे की पुड़िया के लिए चार आने का बिल देना मनुष्यत्व के विपरीत है।

रोगी को आश्वासन देना, सच्चे मन से उसकी चिकित्सा करना और आवश्यकता के समय उसकी दशा स्वयं देखना सभ्य वैद्य का कर्त्तव्य है। कई वैद्य और डाक्टर तो ऐसे हैं कि वे अपने ही किसी मरते हुए रोगी को बिना फीस के नहीं देखते और मरे हुए रोगी को भी देखने की फीस ले लेते हैं! रोगी से पर-वशता के कारण कई भूलें हो जाती हैं; इसलिये क्रोध में आकर उसे मझधार में छोड़ देना सभ्य वैद्य के लिए उचित नहीं है। अनेक रोगियों की मृत्यु-पीड़ा देखने से वैद्यों

का हृदय बहुत कुछ कठोर हो जाता है; इसलिए उन्हें उसमें कुछ दया का संचार करना चाहिए।

(५) मित्रों के प्रति

मित्रता धीमी बाढ़ का पौधा है; इसलिये उसका पालन करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। यद्यपि सच्ची मित्रता में शिष्टाचार के अभाव से बहुधा कोई विघ्न नहीं पड़ता और उसके उपयोग से रूखापन समझा जाता है, तथापि सभ्यता की पराकाष्ठा से उतनी हानि नहीं है जितनी असभ्यता की छाया-मात्र से है। आज-कल विशेष परिचय-वाले सज्जन भी मित्र कहलाते हैं; इसलिये साधारण रीति से सभी प्रकार के मित्रों के साथ उचित शिष्टाचार के पालन की आवश्यकता है। यद्यपि गहरी मित्रता में शिष्टाचार की छोटी-छोटी भूलों से बहुधा बाधा नहीं पहुँचती, तथापि ये ही छोटी-छोटी बातें एकत्र होकर कभी-कभी बड़ा परिमाण प्राप्त कर लेती हैं और मित्रता-रूपी बन्धन को ढीला करके तोड़ देती हैं।

मित्र के साथ व्यवहार करने में उसे ऐसा न जान पड़े कि उसके साथ भिन्नता का व्यवहार किया जाता है। मित्र के अनजाने किये हुए दोषों पर उदारता की दृष्टि रक्खी जावे और उसको अप्रसन्न करने का अवसर सदैव टाला जावे। जहाँ तक हो सच्चे मित्र के साथ सगे भाई का सा व्यवहार करना चाहिये। मित्र के कुटुम्बियों को मित्र ही के समान आदर और प्रेम का पात्र समझना चाहिये मित्र से जहाँ तक हो छल-कपट का व्यवहार न किया जावे और न उस पर किसी प्रकार का अनुचित दबाव डाला जावे।

मित्रता-रूपी पौधे को सदैव सदाचार-रूपी जल से सींचने की आवश्यकता है। मित्र से कभी अनुचित हँसी न की जावे

और न उसे नीचा दिखाने का अवसर लाया जावे। यदि मित्रता भिन्न-भिन्न स्थिति के लोगों में हो तो उन्हें आपस में ऐसा व्यवहार करना चाहिये जिससे उनकी स्थिति की भिन्नता के कारण भेद-भाव उपस्थित न हो। मित्र के साथ अनावश्यक वाद-विवाद करना भी अनुचित है; क्योंकि मत-भिन्नता के कारण बहुधा गाढ़ी-से-गाढ़ी मित्रता भी टूट जाती है। संसार में विद्या और ज्ञान की कोई सीमा नहीं है; इसलिये बड़े-से-बड़े विद्वान् को भी अपनी विद्वत्ता पर अभिमान न करना चाहिये, क्योंकि इससे अल्पज्ञान-वाले मित्रों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

मित्र के साथ अनुचित विनोद करना भी हानिकारक है। यद्यपि हँसी-मज़ाक साधारण बात है, तथापि इससे बहुधा भयङ्कर परिणाम उपस्थित होते हैं। कोई भी आदमी, चाहे वह गाढ़ा मित्र क्यों न हो, हँसी के द्वारा किया गया अपना प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष अपमान सहन नहीं कर सकता और जब वह उसका बदला लेने का प्रयत्न करता है तब परस्पर की खींचा-तानी से अवस्था भयङ्कर हो जाती है; इसलिये हँसी-दिल्लगी को जिसमें बहुधा व्यक्ति-गत आक्षेप रहता ही है, सर्वथा त्याज्य समझना चाहिए। कहा भी है—"हँसी लड़ाई की जड़ है"। हँसी-मज़ाक का दोष बहुधा तरुण मित्रों में पाया जाता है, परन्तु कभी-कभी बड़ी उमर-वाले और सयाने लोग भी इस दुर्गुण के दास हो जाते हैं।

मित्र के कामों को कभी सन्देह की दृष्टि से न देखना चाहिए। यदि तुम्हारा मित्र सच्चा है तो तुम्हारे साथ कभी कपट न करेगा। मित्र के कपट का एक-दो बार परिचय मिलने पर समझना चाहिए कि वह व्यक्ति मित्रता के योग्य नहीं है। ऐसे मनुष्य से धीरे-धीरे और बड़ी चतुराई के साथ घनिष्ठता का सम्बन्ध कम करना चाहिए, जिससे कुछ समय के पश्चात् उससे

केवल शिष्टाचार का सम्बन्ध रह जावे और वह प्रत्यक्ष-रूप से तुम्हारा शत्रु न बने। संसार में बिना कारण के किसी को शत्रु बना लेना मूर्खता का कार्य है। यदि मित्र की ओर से किसी प्रकार का सन्देह हो तो उसे मन में छिपाकर रखने के बदले किसी अवसर पर प्रकट कर देना और उसकी सफाई कर लेना अधिक चतुराई की बात है। यदि सन्देह मन में भरा रहे और अन्य मिथ्या कारणों से उसकी वृद्धि हो जावे तो परस्पर बुरे भाव उत्पन्न होंगे जिसका परिणाम दोनों ओर हानि-कारक होगा।

यदि मित्र में ऐसे दोष हों जिनसे मित्रता की वृद्धि में बाधा पहुँचती हो, तो मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने मित्र के इन दोषों को धीरज और बुद्धिमानी से दूर करने का प्रयत्न करे। यदि मित्र को दोषों की सूचना से बुराई जान पड़े तो इस विषय में उसका समाधान करना आवश्यक है। समझदार मनुष्य अपने मित्र की बताई हुई सूचनाओं को अपने लिए लाभदायक समझकर उनका पालन करेगा। जब किसी भी उपाय से मित्र के दोष दूर न हो सकें और उनसे बड़ी भारी हानि होने की सम्भावना हो तब अन्त में इस बात का विचार करना आवश्यक है कि ऐसे मनुष्य से मित्रता स्थिर रक्खी जावे या नहीं। यदि दोष साधारण है और मित्रता में विघ्न पड़ने की कोई सम्भावना नहीं है, तो उसे क्षमा की दृष्टि से देखना चाहिये।

जब तक कोई बड़ी आवश्यकता न हो तब तक मनुष्य को किसी के साथ अपनी मित्रता का विषय सर्व-साधारण में प्रकाशित न करना चाहिये। दो आदमियों के परस्पर व्यवहार और सम्भाषण की रीति से ही बाहरी लोगों को इस बात का पता लग सकता है कि उन दोनों में कैसा भाव है। सभी बातों में और सभी कहीं अपने मित्र का अन्ध-पक्षपात करके दूसरे

लोगों को मित्रता की घनिष्ठता न बताई जावे। अपने मित्र की भलाई के लिए सब कुछ किया जावे, परन्तु उसके लिए आत्म-गौरव न खोया जावे और दूसरे की बुराई न की जावे।

संकट के समय मित्र की सेवा तन-मन-धन से की जावे। यह एक बड़ा भारी अवसर है जिस पर लोग अपने मित्रों से बहुत कुछ आशा करते हैं और यदि ऐसे समय में शक्ति-शाली होने पर भी कोई मनुष्य अपने मित्र की सहायता न करेगा तो उनकी मित्रता बहुत दिन नहीं चल सकती। यथार्थ में सहानुभूति ही मित्रता का प्रधान लक्षण है और यदि मित्रता में इसी गुण का प्रयोग न किया जावेगा तो वह मित्रता कैसे रहेगी? इसी सहानुभूति से मित्र की ओर उदारता का भाव उत्पन्न होता है।

मित्र के विरुद्ध चुगली करने-वाले लोगों की बातों पर सहसा विश्वास कर लेना उचित नहीं, क्योंकि कुछ लोग ऐसे हैं कि उनके मन को दो मनुष्यों के बीच में गाढ़ी मित्रता देखकर ईर्षा होती है। जब तक अनेक उदाहरणों से चुगली में कहे गये अपराधों का कोई पक्का प्रमाण न मिले तब तक मित्र की ओर किसी प्रकार का सन्देह न करना चाहिये। अधिकांश चुगलियां झूठ निकलती हैं और उनपर सहसा विश्वास करके कोई धृष्टता कर डालने से बुरा परिणाम होता है। चुगल-खोर केवल मित्रता को शत्रुता बनाकर ही सन्तुष्ट नहीं होते, किन्तु शत्रुता को घोर घृणा में परिणत कर देते हैं।

(६) विद्वानों और साधुओं के प्रति

प्राचीन काल से विद्वान् पुरुष आदर के पात्र होते आये हैं। जो विद्वान् अनभिमानी और शान्त-स्वभाव-वाले होते हैं उनका आदर विशेष रूप से किया जाता है। विद्वानों के आदर का

प्रधान कारण यह जान पड़ता है कि उनके पास प्रायः सभी प्रकार की विद्याओं और ज्ञान का वह कोष रहता है जिसकी आवश्यकता औरों को पड़ती है। उनकी आदरणीयता का एक और कारण यह समझ पड़ता है कि उनके समक्ष और मानसिक प्रभाव के कारण अल्प विद्या-वाले मनुष्य अपना अल्पज्ञान स्वतन्त्रता-पूर्वक प्रदर्शित करने की धृष्टता नहीं कर सकते। इतना होने पर भी विद्वानों का यथार्थ मान बहुत कम होता है और इसका एक मुख्य कारण यह है कि अधिकांश विद्वान् धनहीन होते हैं।

विद्वानों का मान करने में अवस्था पर विशेष ध्यान न देना चाहिये। जिसमें विद्या के साथ अवस्था और स्थिति की श्रेष्ठता हो, वह तो सर्वमान्य है ही; परन्तु जहाँ पिछले दो गुण न हों वहाँ विद्या को ही उचित आदर देना चाहिये। विद्वान् के आगे बढ़-बढ़कर बातें करना किसी के लिए भी शोभा-प्रद नहीं है। विद्वानों के मत को थोथी युक्तियों के आधार पर खण्डित करने का प्रयत्न करना उपहास-जनक है। थोड़ी विद्या-वाले को विद्वान् के साथ वाद-विवाद करना भी शोभा नहीं देता। यदि किसी विद्वान् से उच्चारण अथवा तर्क की कोई भूल हो जावे, तो उसके कारण विद्वान् मनुष्य की हँसी उड़ाना अथवा भूल पर अनुचित कटाक्ष करना असभ्यता है।

विद्वान् की गति विद्वान् ही जान सकता है, मूर्ख नहीं; इसलिये यदि कोई मूर्ख किसी विद्वान् का अनादर कर दे तो उससे किसी शिक्षित व्यक्ति को प्रसन्न होने के बदले दुखित होना चाहिये। जो लोग विद्वानों का अनादर करते हैं वे शिक्षित समाज में निन्दनीय समझे जाते हैं। यदि कोई मनुष्य स्वयं विद्वान् होकर अथवा अपने को विद्वान् समझकर दूसरे विद्वान्

को अवहेलना, अनादर अथवा घृणा की दृष्टि से देखे तो उसकी विद्वत्ता को निम्नकोटि की समझना चाहिये।

कभी-कभी कुछ लोग अपनी प्रभुता बढ़ाने के विचार से विद्वानों की समता अथवा अवहेलना करते हैं। ये लोग ऐसा समझते हैं कि विद्वानों का तिरस्कार करने से दूसरे लोग हमें विद्वानों से श्रेष्ठ समझेंगे; पर यह उनकी भूल है। जो मनुष्य सच्चा गुण-ग्राहक है और जिसमें सच्ची सद्बुद्धि है, वह विद्वानों के अपमानकारी को तुच्छ ही समझेगा, चाहे वह अपनी विद्वत्ता का कैसा ही ढिंढोरा पीटे। ऐसे ही आत्म-प्रशंसा के लोभ में कुछ अल्पज्ञ लोग बहुज्ञों के मत का खण्डन करने की ढिठाई करते हैं। वे समझते हैं कि विद्वानों से भिड़ने पर जीते भी जीत है और हारे भी जीत है; पर यह समझना अल्पज्ञों की बड़ी भारी भूल है। कितना ही प्रयत्न किया जावे, तो भी मनुष्य की अल्पज्ञता छिप नहीं सकती और विद्वान् के सामने बात-बात पर उसे अपने अल्पज्ञान के कारण मौन धारण करना पड़ता है। किसी ने ठीक कहा है—

> विद्या-मय हैं प्रकट अति, चतुर, बहुश्रुत, विज्ञ।
> पर वर्ण-क्रम से निपट, निकल पड़े अनभिज्ञ॥

विद्वानों के साथ अथवा विशेषज्ञों के साथ वाद-विवाद करने-वालों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि केवल तर्क और युक्ति ही से काम नहीं चल सकता। उसके लिए शास्त्र-ज्ञान की भी आवश्यकता है। बिना पूर्ण ज्ञान के, विद्वानों से भिड़ना बड़ी मूर्खता है। रहीम कवि ने कहा है—

> करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन हजूर।
> मानो टेरत विटप चढ़ि, इहि प्रकार हम क्रूर॥

कोई-कोई साधु-महात्मा बड़े विद्वान् होते हैं। उनका आदर-सत्कार विद्वानों से अधिक करना उचित है, क्योंकि उनमें

विद्वानों से एक अधिक गुण (संसार-त्याग) रहता है। आज-कल मूर्ख और कपटी साधुओं की अधिकता है; इसलिये इन लोगों से सावधान रहना चाहिये। यद्यपि इन धूर्तों के साथ आदर-सत्कार करने के व्यवहार का अवसर बहुत कम आता है। तथापि इनका प्रकट रूप से अनादर करना आवश्यक नहीं है। इनके साथ अवसर आने पर उदासीनता का व्यवहार किया जावे। सच्चे साधु-महात्माओं से बिना किसी विशेष प्रयोजन के उनकी पूर्व-जाति, वृत्ति अथवा वैराग्य का कारण पूछना असभ्यता है; परन्तु संदिग्ध अवस्था में साधु-वेष-धारी लोगों से जाँच के लिए ये सब बातें पूछी जा सकती हैं। साधुओं के निश्चित कार्य-क्रम में बाधा डालना ठीक नहीं है। उन्हें नियम के विरुद्ध अनेक प्रकार के स्वादिष्ठ भोजन कराना अथवा सुख-चैन में रखना उचित नहीं है। उनके सामने गृहस्थाश्रम के सुखों की चर्चा करना भी अशिष्टता है।

(७) राजा और अधिकारियों के प्रति

यद्यपि अनेक राजा और अधिकारी लोग अपनी प्रभुता के अभिमान में साधारण लोगों को अत्यन्त तुच्छ समझते हैं, तथापि जब तक इन लोगों का व्यवहार मनुष्यता के अनुरूप है; तब तक लोगों को इन महानुभावों का उचित और नियमानुकूल आदर करना आवश्यक है। राजाओं और अधिकारियों के सामने जाकर जहाँ और जैसे खड़े होने अथवा बैठने की रीति हो, वहाँ वैसे ही खड़े होना अथवा बैठना चाहिये। इन लोगों को प्रणाम भी निश्चित रीति से किया जावे। कोई-कोई राज्याधि-कारी अपने अधीन कर्मचारी और प्रार्थियों को बैठने तक के लिए आसन नहीं देते और उन्हें खड़ा रखने में अपना गौरव समझते हैं। आवश्यकता के कारण इस अपमान को सहना ही

भाग्य है ; क्योंकि शक्तिशाली महापुरुषों की उदण्डता के लिए कोई सहज और सभ्य प्रतिकार नहीं है। कोई-कोई अधिकारी प्रणाम का उत्तर केवल अभिमान-पूर्वक सिर हिलाकर देते हैं। यह भी एक अत्याचार है जिसके रोकने के लिए आन्तरिक घृणा के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं दीखता।

पूर्वोक्त महानुभावों से मिलने और बात-चीत करने के सम्बन्ध में सावधानी की आवश्यकता है। उनसे केवल नियत समय पर मिलना और निश्चित बातचीत करना चाहिये। जहाँ तक हो बातचीत में किसी दूसरे मनुष्य की निन्दा न की जाय और न अपनी बड़ाई प्रकट की जाय। राज्याधिकारियों के पास उतने ही समय तक ठहरना चाहिये जितने समय तक कार्य की आवश्यकता हो। बात-चीत संक्षेप में, परन्तु स्पष्ट-रीति से करनी चाहिये जिसमें कहने-वाले का उद्देश्य सिद्ध हो और सुनने-वाले को यथार्थ व्यवस्था सरलता से प्रकट हो जावे। संकोच के वश कुछ न कहना और धृष्टता के वश आवश्यकता से अधिक कह डालना, ये दोनों ही अवस्थाएँ त्याज्य हैं।

राज्य की उचित आज्ञाओं का पालन करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। आवश्यकता पड़ने पर प्रजा के प्रत्येक मनुष्य को शासन के कार्य में सहायता देना चाहिए और अपने राजा तथा देश के लिए तन, मन, धन अर्पण करने में भी संकोच न करना चाहिए। प्रत्येक उत्तरदायी नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रजा पर होनेवाले अत्याचारों की सूचना राजा अथवा दूसरे अधिकारियों को देने में किसी प्रकार का संकोच न करे। यदि हो सके तो उसे राज्य की ओर से की गई किसी भारी भूल की सूचना भी उपयुक्त अधिकारी के पास पहुँचा देना चाहिए।

राज्य की ओर से जिन लोगों को सम्मान अथवा उच्च पद प्राप्त हुआ हो उनके प्रति भी हमें आदर प्रकट करना चाहिए।

जब तक असन्तोष का कोई कारण उपस्थित न हो, तब तक राज्याधिकारियों के प्रति सदैव आदर और सभ्यता का व्यवहार किया जावे। किसी लोक-प्रिय राज्याधिकारी का स्थानान्तर होने पर छोटा-मोटा उत्सव कर देना भी शिष्टाचार की सीमा के भीतर है। प्रजा-हितैषी राजा के किसी स्थान में पधारने पर वहाँ के निवासियों को अपनी राज-भक्ति का पूरा परिचय देना चाहिए। राजा चाहे छोटी अवस्था का हो अथवा युवराज ही हो, पर उसके आदर-सत्कार में किसी प्रकार की त्रुटि न की जावे। राज-परिवार के लोगों के साथ भी, जब तक उनमें राजोचित सभ्यता है, आदर और शिष्टाचार का व्यवहार किया जावे।

उच्च राज-कर्मचारियों से बात-चीत करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जब तक उनके साथ घनिष्ठता का सम्बन्ध न हो, तब तक उनसे विनोद-पूर्ण सम्भाषण न किया जाय। घनिष्ठता होने पर भी विनोद की मात्रा सभ्यता-पूर्ण रहे। किसी विषय पर निवेदन करते समय दूसरे लोगों के विरुद्ध अथवा अपने पक्ष में केवल उतनी ही बातें कही जावें जिनसे उस विषय का सम्बन्ध हो। इससे अधिक आत्म-प्रशंसा अथवा पर निन्दा के लिए शिष्टाचार में स्थान नहीं है। यद्यपि अधिकांश राजकीय कार्य्य पत्र-व्यवहार ही से निष्पन्न करना उचित और आवश्यक है; तथापि कई-एक बातें आपसी भेंट-मुलाकात में सरलता-पूर्वक निश्चित हो सकती हैं; इसलिये राजकर्मचारियों से कभी-कभी मिलने की आवश्यकता होती है।

अधिकारियों के पास उचित पोशाक पहिनकर जाना चाहिये। यदि किसी दरबार में जाने का प्रयोजन हो तो दरबार के नियमों के अनुसार विशेष प्रकार के वस्त्र धारण करने की आवश्यकता है। विशेष-करके विद्वानों के लिए सर्व-सम्मति से

जो पोशाक निश्चित की गई हो वही उनको धारण करना चाहिए।

न्यायालय में जो कुछ पूछा जावे उसका उत्तर स्पष्ट रीति से और सभ्यता-पूर्वक देना चाहिए। न्यायाधीश की निष्पक्ष आज्ञा मानना परम आवश्यक है; इसलिए जिस समय वह किसी से शान्त होने को कहे तो उस समय उसे शान्त हो जाना चाहिए। न्यायालय में किसी उत्तरदायी कर्मचारी की आज्ञा के बिना कोई कागज़, पत्र पढ़ना अथवा उठाना-धरना केवल शिष्टाचार के ही विरुद्ध नहीं; किन्तु कानून के भी खिलाफ़ है। न्यायाधीश को अपमान-जनक उत्तर देना भी एक अपराध है; इसलिए उसके अप्रसन्न होने पर भी उसे वैसी ही अप्रसन्नता से उत्तर न देना चाहिए। यदि किसी न्यायाधीश के न्याय से किसी को असन्तोष हो तो उसके लिए उचित न्याय के निमित्त दूसरा बड़ा न्यायालय खुला रहता है।

अधिकांश राज-कर्मचारी दौरे पर जाकर देहातों में बड़ा ही अनुचित व्यवहार करते हैं। ये लोग गरीब ग्रामीणों से केवल बेगार ही नहीं कराते, किन्तु और भी कई प्रकार के अनुचित काम लेते हैं। यदि ये लोग सभ्यता का व्यवहार करें तो गाँव के निवासी अपनी मान-मर्यादा भूलकर इनके छोटे छोटे काम भी प्रसन्नता-पूर्वक कर सकते हैं; पर ये कर्म-चारी बहुधा अपनी प्रभुता के अभिमान में पढ़े-लिखे लोगों से भी कभी-कभी ऐसा काम करने को कहते हैं जो केवल अपढ़ नौकर के करने योग्य होता है। ऐसी अवस्था में गाँव के प्रतिष्ठित, शिक्षित और उत्तर-दायी सज्जनों का यह काम है कि वे राज-कर्मचारियों की अनुचित इच्छाओं का सदैव सभ्यता-पूर्वक प्रतिवाद करें और अपने को उनकी किसी ऐसी सेवा में न लगावें जिसमें गाँव के आत्म-सम्मान में कलंक लगे। यदि कोई कर्मचारी अपने अशिष्ट

व्यवहार को बंद न करे तो उसकी रिपोर्ट उच्च-कर्मचारियों के पास की जावे, अथवा उसके साथ उदासीनता का ऐसा व्यवहार किया जावे जिसमें उसे अपनी भूल पर पछताना पड़े।

(८) पड़ोसी के प्रति

पड़ोसी के साथ प्रेम-भाव रखना केवल शिष्टाचार ही की दृष्टि से नहीं, किन्तु उपयोगिता और सहयोग की दृष्टि से भी आवश्यक है। नीति के विचार से भी पड़ोसी के प्रति सद्भाव प्रकट करना उचित है। पड़ोसी चाहे ऊँची जाति का हो अथवा नीची जाति का, धनवान् हो या कङ्गाल, विद्वान् हो अथवा अशिक्षित, उसके साथ सदैव शिष्ट व्यवहार किया जावे। कई लोग प्रभुता पाकर बहुधा पड़ोसियों को पीड़ित करने में अपना गौरव समझते हैं, परन्तु उनका यह व्यवहार सर्वथा निन्दनीय है। यदि किसी कारण से पड़ोसी के साथ मित्र-भाव स्थापित न हो सके तो ऐसी दशा में शिष्ट उदासीनता का व्यवहार करना उचित होगा।

घर बनाने अथवा निस्तार करने में मनुष्य को इस बात की सावधानी रखनी चाहिये कि पड़ोसी को उससे कोई अड़चन अथवा खेद न हो। कई महानुभाव छल कपट से अथवा अधिकार के बल पर पड़ोसियों की जमीन दबाने, उनका निस्तार रोकने और अपने निरङ्कुश व्यवहार से उन्हें तङ्ग करने का प्रयत्न करते रहते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि बहुधा दोनों में कई पीढ़ियों तक शत्रुता चली जाती है। ये सब कार्य मनुष्य की जंगली अवस्था के चिह्न हैं। उचित तो यह है कि यदि कोई पड़ोसी सभ्य और शान्त स्वभाव-वाला है तो उसकी सब प्रकार से सहायता की जावे। यदि पड़ोसी का मकान नीचा हो तो अपने मकान से उसके घर की ओर झाँकना अथवा उसे

अड़चन देने-वाला कोई विस्तार करना अशिष्ट है। पड़ोसी के मकान की ओर छज्जे, खिड़कियाँ अथवा नालियाँ निकालना किसी भी अवस्था में उचित नहीं है।

पड़ोसी के लड़कों-बच्चों पर प्रायः अपने ही बच्चों के समान प्रेम-व्यवहार करना चाहिये और पड़ोसी की माँ-बहिनों को अपनी माँ-बहिनों के समान मानना चाहिये। समय-समय पर पड़ोसी के यहाँ आना-जाना और उसके उत्सव आदि कार्यों में भाग देना शिष्टता का चिह्न है। यदि हो सके तो कभी-कभी उसे भोजनादि के लिए भी निमंत्रित करना चाहिये। यदि पड़ोसी गरीब हो तो मनुष्य के पड़ोसी के आगे अपने धन आदि का ऐसा वैभव न दिखाना चाहिए जिससे उसे आन्तरिक वेदना हो। पड़ोसी के लड़कों-बच्चों की उपस्थिति में कोई मनुष्य अपने बच्चों को खाने-पीने की ऐसी चीज़ें न देवे जिन्हें वह दूसरे बच्चों को न दे सके।

पड़ोसी की बीमारी की दशा में उसकी सहायता करनी चाहिये और समय-समय पर उसका समाचार लेना चाहिये। पड़ोस की स्त्रियों की बीमारी में खबर के लिए स्त्रियों का जाना उचित है। यदि पड़ोसी के यहाँ गमी हो जाय तो उसमें भी सम्मिलित होना आवश्यक है। निर्धन पड़ोसी की बीमारी अथवा विपत्ति की अवस्था में आर्थिक सहायता देना शिष्टता और नीति का कर्तव्य है। आवश्यकता पड़ने पर पड़ोसी को उचित सलाह देना चाहिये और उसके किसी भी गुप्त-भेद को प्रकट करने अथवा जानने की इच्छा न करनी चाहिए। यदि पड़ोसी की ओर से दो-एक बार साधारण अपराध हो जाय तो उन्हें क्षमा की दृष्टि से देखना चाहिये।

जहाँ तक हो सके पड़ोसी से लड़ाई-झगड़ा करने का अवसर न लाया जावे, क्योंकि पड़ोसी की शत्रुता सब अवस्थाओं में

हानिकारक होती है। कोई मनुष्य बार-बार शत्रु को देखने अथवा उसकी बातों का स्मरण करने से चित्त की शान्ति स्थिर नहीं रख सकता; इसलिये, पड़ोसी से बिगाड़ होने का अवसर सदैव टाल दिया जावे। यद्यपि दुष्ट का संग नरक के वास से भी बुरा कहा गया है, तथापि यह बात सम्भव है कि किसी के शिष्ट व्यवहार से दुष्ट मनुष्य भी अपना व्यवहार सुधार सकता है। बहुधा दुष्ट मनुष्य भी अधिकांश में अपने पड़ोसी के साथ दुष्टता का व्यवहार नहीं करते। पड़ोसी की सहायता यहाँ तक लाभकारी होती है कि लोग बहुधा उसके भरोसे अपना घर-द्वार और लड़के-बच्चे छोड़ जाते हैं।

यदि पड़ोसी के यहाँ की स्त्रियों में पर्दे की चाल हो तो उनके मिलने पर पुरुषों को अपनी दृष्टि इस भाँति फेर लेनी चाहिये जिसमें उन्हें कोई अड़चन न हो और अपने पर्दे का पालन करने के लिये अवसर मिल जावे। पड़ोसी के घर के भीतरी भाग में बिना आवश्यकता के अथवा बिना सूचना दिये जाना उचित नहीं। जब-तक कोई आवश्यक कार्य न हो तब-तक अपने घर के भीतरी भाग से अथवा ऊपरी कोठे से पड़ोसी को बुलाना अथवा उससे बात-चीत करना अशिष्टता का चिह्न है। स्त्रियाँ बहुधा इस नियम का उल्लङ्घन कर देती हैं, पर उनका यह कार्य नियम-विरुद्ध ही है।

पड़ोसी का महत्व इसी एक बात से सिद्ध हो सकता है कि लोग किसी भी दुष्ट अथवा अभिमानी व्यक्ति के पड़ोस में रहना पसंद नहीं करते।

(९) सेवकों के प्रति

सेवकों के साथ शिष्टाचार का व्यवहार करना कई कारणों से आवश्यक है। एक मुख्य कारण तो यह है कि हम अपने

शिष्टाचार से सेवकों की स्वाभाविक अशिष्टता को सुधार सकते हैं। नीति की दृष्टि से तो सेवकों का पालन-पोषण करना स्वामी का एक प्रधान कर्तव्य है। वन को जाते समय रामचन्द्र जी ने अपने दास और दासियों को बुलाकर तथा उन्हें गुरु को सौंपकर कहा था कि—

"सब कर सार-सँभार गुसाईं।
करेहु जनक-जननी की नाईं॥"

जहां तक हो नौकरों के प्रति कड़ा व्यवहार न किया जावे। उन्हें काम में बार-बार टोकना या उन पर सदा क्रोध करते रहना केवल शिष्टाचार ही की दृष्टि से नहीं, किन्तु उपयोगिता की दृष्टि से भी हानि-कारक है। मालिक की रात-दिन की खट-खट से ऊबकर नौकर काम छोड़ देने के लिए तैयार हो जाता है और जिसके यहां नौकर बहुधा बदलते रहते हैं उसके विषय में लोग निन्दा करने लगते हैं। ऐसी अवस्था में उचित यही है कि नौकरों के साथ न्याय और दया का बर्ताव किया जावे।

इस बात का प्रयत्न करना आवश्यक है कि नौकर अपना काम मन लगाकर करे; इसके लिए उपयुक्त अवसर पर उसे कुछ पुरस्कार दिया जावे। नौकर की बीमारी और विपत्ति की दशा में भी उसके साथ सहानुभूति प्रकट करने की आवश्यकता है। जहाँ तक हो बीमारी या साधारण गैर-हाजिरी में उसकी तनखाह न काटी जावे। नौकर पर क्रमशः विश्वास बढ़ाना चाहिये जिसमें वह अपना काम अधिक सचाई से करने का उद्योग करता रहे। नौकर के द्वारा मोल मँगाई गई वस्तुओं को सावधानी से देखना और उनका मूल्य जाँचना बहुत आवश्यक है, पर आने दो आने के अन्तर पर उसे सहसा झूठा बनाना उचित नहीं।

कई नौकर स्वभाव ही से दुष्ट, चोर और चालाक होते हैं; इसलिये ऐसे नौकरों को बिना पूरा विश्वास किये काम में लगाना ठीक नहीं। यदि भूल से ऐसे नौकर काम में लगा लिये जायँ तो भूल मालूम होने पर उन्हें चतुराई से जवाब दे देना चाहिये। किसी भी अवस्था में ऐसा अवसर कभी न लाया जाय कि मालिक और नौकर के बीच में खुल्लम-खुल्ला कहा-सुन[illegible] या गाली-गलौज होने लगे।

नौकरों से बहुधा उतना ही काम लिया जाय जितना का[illegible] उन्हें दिया जाता है। ज्यादा काम के लिये ज्यादा दाम देना वाजिब और जरूरी है। नौकर से कभी ऐसा काम न कराया जावे जो उसके गौरव के विरुद्ध हो। यदि लोभ के वशीभूत होकर कोई नौकर अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध कोई काम करना स्वीकार कर ले तो उसका यह भेद सब में प्रकट न किया जावे और न सब के सामने उससे वैसा काम करने को कहा जावे। इस प्रकार के अपमान-कारी कामों का एक उदाहरण यह है कि लोग कभी-कभी ढीमरों से जूते साफ करवाते हैं जिसको वे लोग बहुधा अपनी जाति के विचार से स्वीकार नहीं करते। नौकर से कभी ऐसा गूढ़ कार्य न कराया जाय जिसे वह किसी समय नौकरी छोड़ने पर प्रकट कर दे। उसके आगे दूसरों की निन्दा करना भी उचित नहीं। बहुत पुराने नौकर के साथ कई बातों का अनुग्रह करने की आवश्यकता है।

(१०) अछूतों के प्रति

अछूतों के पास बिठलाने अथवा मंदिरों में जाने देने के लिए अभी समय भले ही लगे; पर उनसे सभ्यता और दयालुता का व्यवहार किसी भी समय किया जा सकता है। अछूत जातियों में विशेषकर बसोर, भंगी, चमार, डोम, आदि सम्मिलित

हैं। यद्यपि और भी कई जातियाँ ऐसी हैं जो इनसे पवित्रता या शुद्धता में किसी प्रकार बढ़कर नहीं है, तथापि लोग उन्हें अछूत नहीं मानते। प्रायः सभी लोग इन जातियों के गरीब आदमियों से अनादर-पूर्वक बोलते हैं और यदि भीड़ में धोखे से भी इन लोगों का छुआ लग जाय तो दूसरे जाति-वाले इन्हें डाँटते हैं। यह सब स्वार्थ और असभ्यता का व्यवहार है।

अछूत जातियों से दया-पूर्वक बर्ताव करना उचित है और [illegible] किसी का इन लोगों का छुआ लग जाय तो उसको इन्हें [illegible]ना अनुचित है। इन लोगों से जो काम कराया जाय उसकी मजूरी पूरी देनी चाहिये। कई लोग इन्हें थोड़े ही अपराध पर गाली देने को तैयार हो जाते हैं, पर गाली देने-वाले लोग यह नहीं सोचते कि जो काम अछूत लोग करते हैं वह ऊँची जाति-वालों से नहीं बन सकता। जब हमें इन लोगों पर इतना अवलम्बित रहना पड़ता है तब हमारे लिए यह उचित नहीं है कि हम इनका तिरस्कार करें। समय ने पलटा खाया है; इसलिये अब अछूत जातियाँ भी अपने अपमान का प्रतिवाद करने लगी हैं। ऐसी अवस्था में एक ब्राह्मण को किसी अछूत मनुष्य से झगड़ा करते देख किसको दुख न होगा?

हम लोगों की सामाजिक प्रथाएँ इतनी दूषित हैं कि अछूत जातियाँ किसी प्रकार अपनी उन्नति कर ही नहीं सकतीं। ये लोग पाठशालाओं में पढ़ने नहीं पाते, किसी के दरवाजे के भीतर पैर नहीं रख सकते और न रेल आदि सवारियों में स्वतन्त्रता से बैठने के अधिकारी हो सकते हैं। ऐसी अवस्था में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ये लोग अपने आराम के लिए पूर्वजों का धर्म छोड़कर दूसरे धर्म में चले जाते हैं। हिन्दुस्थानी लोगों को उचित है कि वे इन जातियों को यथा-शक्ति सुधारने का प्रयत्न करें। यद्यपि शहरों में इन लोगों के

साथ असभ्य वर्ताव किया जाता है तो भी गाँव के लोग इन्हें अछूत मानकर भी इनसे एक प्रकार का कल्पित पारिवारिक सम्बन्ध मानते हैं। जब गाँव की कोई स्त्री किसी चमार को दादा या भैया कहकर पुकारती है तब क्षण-भर के लिए मनुष्य के हृदय की उदारता का चित्र आँखों के सामने आ जाता है।

जहाँ तक हो अछूत जातियों से सहानुभूति का भी व्यवहार किया जावे। यदि उच्च जाति के लोग इनके दुःख-सुख में श[illegible] हों और समय पड़ने पर इन्हें उचित परामर्श देवें तो [illegible] जाति वालों को कदाचित् कोई नाम न धरेगा और न जाति [illegible] निकालेगा। हमें इस विषय में ईसाइयों का अनुकरण करना चाहिये जो इन लोगों के घर जाकर इन्हें पढ़ना-लिखना और अपना धर्म सिखाते हैं।

कुछ लोग ऐसा अनुमान करते हैं कि नीच जातियों को उत्तेजन देने से वे आगे उद्दण्डता का व्यवहार करने लगेंगी। इस आशंका को दूर करने का सब से उत्तम उपाय इन लोगों की शिक्षा है जिससे इनका हृदय विस्तृत और बुद्धि उन्नत हो सकती है। यदि हमारे कुछ उत्साही सहधर्मी अछूत जातियों की शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लेवें और दूसरों के आक्षेपों का विचार न कर अपना कर्त्तव्य पालते जावें, तो अछूतोद्धार की समस्या बहुत कुछ हल हो सकती है।

(११) प्रार्थियों के प्रति

अदालतों में प्रार्थियों की प्रायः बड़ी दुर्दशा होती है। वहाँ चपरासी से लेकर न्यायाधीश तक और वकील के मुन्शी से लेकर स्वयं वकील साहब तक प्रार्थियों की ओर बहुधा अशिष्टता का व्यवहार करते हैं। किसी-किसी न्यायाधीश के विषय में तो यहाँ तक सुना गया है कि वे प्रार्थिनी स्त्रियों तक को गालियाँ

देते हैं। कचहरी के अधिकांश कर्मचारियों की अशिष्टता का एक कारण यह जान पड़ता है कि वे लोग प्रार्थियों से बहुधा बात-बात पर पैसे खींचना चाहते हैं और जब वे इस काम में सफल नहीं होते तब बहुधा अशिष्टता का व्यवहार करने लगते हैं। बहुत दिन के अभ्यास से इन कर्मचारियों का जिनमें बहुत शिक्षित भी होते हैं, स्वभाव बहुधा इतना बिगड़ जाता है कि छोटी-छोटी बातों पर भी बड़ी ऐंठ दिखाते हैं। भले से भले आदमी को मूर्ख बना देना इनके लिए एक साधारण बात है। यद्यपि कचहरी के अशिष्ट कर्मचारियों को अपनी ऐंठ की सफलता पर आनन्द होता है, तथापि शिक्षित और सभ्य-समाज में इन्हें सच्चा आदर प्राप्त नहीं हो सकता।

अशिष्ट न्यायाधीश को भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि वह किसी अपराधी को शिष्ट वचन कहकर दण्ड देगा तो अपराधी दण्ड पाकर भी उस न्यायाधीश की प्रशंसा करेगा। इसके विरुद्ध जो न्यायाधीश कठोर वचन कहकर अपराधी को दण्ड-आज्ञा सुनाएगा, वह अपराधी की दृष्टि में दुहरा कठोर समझा जायगा और सम्भव है कि अपराधी आगे-पीछे उससे बदला लेवे। यदि कोई न्यायाधीश किसी कैदी को फाँसी का हुकुम सुनाने के पश्चात् उससे यह कहे कि "मुझे तुम्हारे प्राणों पर बहुत दया आती है और मैं बहुत चाहता हूँ कि तुम्हें इस दंड से मुक्त कर दूँ; परन्तु खेद है, मैं न्याय के कारण विवश होकर तुम्हें यह सब से कठिन दण्ड देता हूँ", तो उस न्यायाधीश के प्रति मरते-मरते भी अपराधी के मन में अच्छा भाव रहेगा।

अशिष्टता के सबसे बुरे उदाहरण अधिकांश में मूर्ख पुलिस-वाले प्रकट करते हैं। इन लोगों की दृष्टि में किसी से सभ्यता-पूर्वक बात करना कदाचित् अपना रोब खो देना है। ये लोग

बहुधा सीधे बात करना जानते ही नहीं और अपराध स्वीक[illegible]
कराने में तो भावी अपराधी को कभी-कभी प्राणान्त कष्ट दे
डालते हैं। पुलिस-वालों के लड़के-बच्चे तक अपने पिताओं [illegible]
की प्रवृत्ति का अनुकरण कर बहुधा दूसरे लड़कों पर अपना
अधिकार जमाना चाहते हैं। पुलिस-वालों की अनुचित प्रवृत्ति [illegible]
और असभ्य व्यवहार के कारण लोग बहुधा इनके पड़ोस में रहना [illegible]
पसंद नहीं करते। यद्यपि हिन्दुस्थान की पुलिस की [illegible]
निन्दा होती है तो भी इंगलैंड की पुलिस के विषय में [illegible]
प्रशंसा ही सुनी जाती है। हिन्दुस्थान में भी अनेक पुलिस-
वाले बड़े ही सभ्य देखे और सुने गये हैं; पर ऐसे लोग अपने
विभाग में बहुधा सफल नहीं समझे जाते।

प्रार्थियों के प्रति अशिष्टाचार प्रायः ऐसे स्थानों में भी देखा
जाता है जहाँ इसके लिए कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं दिखाई देता।
यदि कोई नौकर किसी महाजन के यहाँ जाकर नौकरी के लिए
प्रार्थना करता है तो महाजन उस नौकर को कभी-कभी धुतकार
देता है। यदि कोई किसी से उपयोग के लिए कोई वस्तु माँगता
है तो उस वस्तु का स्वामी बहुधा उद्दण्डता-पूर्वक यह उत्तर
देता है कि "यह चीज़ यहाँ कहाँ रखी है?"

दफ़्तरों के कई-एक बड़े बाबू तो अपने पद का इतना गर्व
करते हैं कि वे उम्मेदवारों को अपने कमरे के भीतर ही नहीं
आने देते अथवा उनकी एक भी बात का निश्चित उत्तर नहीं
देते। कई लोग प्रार्थियों को बार-बार भटकाते हैं और अन्त में
उनकी प्रार्थना को निर्दयता-पूर्वक अस्वीकृत कर देते हैं। सभ्यता-
पूर्वक सूचित की हुई अस्वीकृति प्रार्थियों को उतना कष्ट नहीं
पहुँचाती जितना अधिकारियों की अहंमन्यता और असभ्यता।

कई-एक वकीलों की यह रीति है कि वे बहुधा आसामियों
से रुपया तो भरपूर ले लेते हैं; पर मुकद्दमे की तैयारी नहीं

देते और पेशी पर हाज़िर नहीं होते। यदि मुवक्किल उनसे [illegible] कहता है तो वे बहुत गरम होते हैं और मुक़द्दमा छोड़ देने की धमकी दे देते हैं। बेचारा आसामी यह अत्याचार उन लोगों के हाथों सहता है जो देश के नेता बनने का दम भरते हैं। गोसाईं जी ने ठीक कहा है कि "पर उपदेश कुशल बहुतेरे"

(१२) सम्पादकीय

सम्पादकीय शिष्टाचार में सम्पादक, लेखक, प्रकाशक और पाठकों का परस्पर शिष्ट व्यवहार सम्मिलित है। प्रकाशक को पत्र की छपाई पुराने घिसे टाइपों से न करानी चाहिए और यदि पत्र का मूल्य महँगा हो तो उसे अच्छे कागज पर छपाना चाहिए। पत्र में अश्लील विज्ञापन न छापे जायँ और जहाँ तक हो धूर्तों के विज्ञापन प्रकाशित न किये जायँ। सम्पादकों को ऐसे लेख न छापना चाहिए जिनमें किसी एक रस की पराकाष्ठा हो। उसे प्रायः सभी रसों के उचित परिमाण-वाले लेख छापना उचित है। मासिक पत्रों में पद्य का भी उचित समावेश होवे।

किसी पुस्तक की समालोचना करते समय पुस्तक ही की समालोचना करना उचित है; उसके लेखक के विषय में व्यक्तिगत रूप से अनधिकार चर्चा करना उचित नहीं। कोई-कोई सम्पादक किसी लेखक से कारण-वशात् अप्रसन्न होने के कारण विरुद्ध समालोचना कर बैठते हैं, यह कार्य्य अशिष्टता-मय है। जो सम्पादक जिस विषय को न जानता हो—सभी सम्पादक सर्वज्ञ नहीं होते—उसे उस विषय में अपनी सम्मति देने की धृष्टता न करनी चाहिये। इसके लिए उचित उपाय यही है कि सम्पादक उस विषय की समालोचना किसी विशेषज्ञ से करावे

और उसके साथ समालोचक का नाम लिख देवे। यदि समा-लोचक चाहे तो उसके यथार्थ नाम के बदले कोई कल्पित नाम छाप दिया जावे। कई-एक सम्पादक समालोचना के लिये भेजी गई उपयुक्त पुस्तकों की प्राप्ति भी स्वीकृत नहीं करते और स्वार्थ-वश कभी-कभी उनकी समालोचना नहीं छापते। यह व्यवहार निन्दनीय है।

किसी-किसी मासिक-पत्र में ऐसे-ऐसे समालोचकों के नाम छपे जाते हैं जिन्हें पत्रों के विद्वान् पाठक समालोचना करने के योग्य नहीं समझते। ऐसे समालोचकों से समालोचना कराकर और उसके साथ उनका नाम छपाकर सम्पादक लोग प्रत्यक्ष रूप से अपने पत्रों की प्रतिष्ठा घटाते हैं और परोक्ष-रूप से योग्य लेखकों का अपमान करते हैं। साथ ही वे पत्र के पाठकों पर भी एक प्रकार का मानसिक अत्याचार करते हैं। कई-एक सम्पादक ऐसे देखे जाते हैं जो स्वयं पुस्तक-प्रकाशक, पुस्तक-विक्रेता और साथ ही सम्पादक तथा विज्ञापक भी हैं। ऐसे लोग भला दूसरों की पुस्तकों की उचित समालोचना कब कर सकते हैं? कई समालोचक अश्लीलता तक का उपयोग कर बैठते हैं और अपनी विचार शैली से गुण्डों के पद को भी पार कर जाते हैं।

लेखकों को ऐसे विषय पर लेखनी चलाना उचित नहीं जिनका उन्हें अच्छा ज्ञान न हो। आज-कल हिन्दी में कई-एक लेखक इसी कोटि के पाये जाते हैं। ये लोग बहुधा दूसरी भाषाओं का व्यवसायिक ज्ञान प्राप्त करके उनके उच्च कोटि के लेखों का अनुवाद करते हैं और मूल लेख का उल्लेख न कर स्वयं ही उस लेख के लेखक बन बैठते हैं! इसी प्रकार कई एक बिना किसी कृतज्ञता के दूसरी पुस्तकों से पृष्ठ के पृष्ठ नकल करके ग्रन्थ तैयार कर लेते हैं। समय-समय पर ऐसे लेखकों की

देते खोली जाती है, पर लोगों के आक्षेप बहुधा उन्हें अपने ...र्य-मार्ग से नहीं हटा सकते। कई-एक पुराने लेखकों की कृतियों से इस समय यह पता लगा है कि उनके जो ग्रन्थ कुछ समय तक युगान्तर उपस्थित करते रहे वे यथार्थ में दूसरी भाषा की पुस्तकों के अनुवाद-मात्र थे। ऐसी अशिष्ट कृतियों से प्रशंसा नहीं हो सकती।

सम्पादक लोग बहुधा दूसरों के लेखों में बे-हिसाब काट-छांट ... की उद्दण्डता भी कर डालते हैं। यद्यपि कई लेखक अपने ...की उमङ्ग में कभी-कभी बे-सिर-पैर की बातें लिख मारते हैं तो भी सम्पादक को उचित है कि वह किसी भी लेख में अल्पतम परिवर्त्तन करे। हाँ, जो लेख बिलकुल ही बदलने के योग्य हो, परन्तु जिसमें महत्त्व-पूर्ण विवेचन किया गया हो, उसे लेखक की आज्ञा लेकर पूरा बदल देना अनुचित नहीं है। किसी लेखक से लेख प्राप्त होने पर उसकी सूचना देना चाहिये और यदि लेख छपने योग्य हो तो उसे उपयुक्त अवधि में छाप देना चाहिये। जहां तक हो सके अस्वीकृत लेख नम्रता-पूर्वक कारण समझाकर लेखक को लौटा दिये जायँ। ऐसा न हो कि लेख प्राप्त होने पर उसकी पहुँच न लिखी जाय और लेखक के पूछने पर उसे कुछ उत्तर न दिया जाय।

सम्पादकों को अपने पत्रों में दूसरे पत्रों का उल्लेख बहुत कम करना चाहिये। यद्यपि पत्रों की परस्पर मुठ-भेड़ से अधिकांश पाठकों का मनोरञ्जन होता है और जिस पत्र के उत्तर कुछ अधिक चुटीले होते हैं उसकी प्रतिष्ठा कुछ समय के लिए बढ़ जाती है, तथापि शिष्टता का बलिदान करके प्रतिष्ठा-रूपी फल प्राप्त करना निन्दनीय है। कई-एक सम्पादक लोक-प्रियता अथवा ग्राहक-संख्या बढ़ाने के लिए स्त्रियों के शृंगार-रस-सम्बन्धी चित्र अधिकता से देते हैं, जिससे मानो वे अपना गौरव

बेचकर धनोपार्जन करते हैं। कुछ सम्पादक ऐसे भी होते हैं धन की आशा में प्रजा-पीड़क राजा-महाराजाओं तक के चित्र और चरित्र अपने पत्रों में निःसंकोच भाव से छाप देते हैं।

यहाँ पर पुस्तकों और पत्रों के मूल्य पर भी कुछ कह देना आवश्यक है। कई-एक पुस्तक-प्रकाशक ऐसी पुस्तकों पर, जिन्हें वे सरकारी पाठशालाओं में पाठ्य-पुस्तक कराना चाहते हैं पहले से कुछ भी मूल्य नहीं छापते और पुस्तक स्वीकृत हो पर उसे मन-माने दामों पर बेचते हैं। इसी प्रकार कई प्रकाशक किसी प्रतिष्ठित लेखक की छोटी सी पुस्तक को भी बहुत ही ऊँचे दामों में इस आशा से बेचते हैं कि लोग लेखक की प्रतिष्ठा के कारण अधिक दाम देने में आना-कानी न करेंगे। व्यवसाय की दृष्टि से भी यह चालाकी अशिष्ट समझी जाती है। सामयिक पत्रों के मूल्यों में भी बहुधा ऐसी ही अशिष्टता दिखाई देती है।

सामयिक पत्रों की भाषा और विचारों में भी बहुत-कुछ सुधार की आवश्यकता है। यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि अच्छे से अच्छे विद्वान् भी कभी-कभी अपनी मातृ-भाषा को असावधानी के कारण शुद्धता-पूर्वक नहीं लिख सकते। कुछ सम्पादक और लेखक ऐसे हैं जो उर्दू के किसी कवि की कुछ कविता उद्धृत किये बिना अपना लेख ही नहीं लिख सकते। वे कदाचित् यह समझते हैं कि सादी, हाली और तकी का नाम लिये बिना उनके लेख का मान ही न होगा। एक हिन्दी-भाषी सज्जन तो बिना ही उर्दू पढ़े सामयिक पत्रों में धड़ाधड़ उर्दू की गजलें छपवा रहे हैं। कुछ लेखक ऐसे भी हैं जो शेक्स-पियर और मिल्टन की दुहाई दिये बिना और हिन्दी अनुवाद के साथ उनके विचार अंगरेज़ी में उद्धृत किये बिना अपने को धन्य नहीं मान सकते। किसी-किसी लेख में उर्दू शब्दों की

देते जो प्रधानता रहती है कि वह लेख लेखक की उर्दू-विज्ञता प्रकट करने के सिवा प्रायः और कोई बात प्रकट नहीं करता। कई-एक लेखक ऐसे विचित्र हैं कि उनका एक वाक्य एक पृष्ठ में और एक पैरा तीन पृष्ठों में पूरा होता है! यदि ऐसे लेखकों और सम्पादकों को केवल हिन्दी जानने-वाले पाठक अनुभव-हीन और अयोग्य समझें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

(१३) सार्वजनिक

जिन स्थानों पर सर्व-साधारण का निस्तार होता है, उन पर दूसरों का निस्तार रोकना और केवल अपना ही निस्तार करना अनुचित है। आम सड़क के बीच में अथवा उस पर चलने-वाले लोगों के मार्ग में खड़ा होना अशिष्टता है। लोग बहुधा सड़कों पर अपनी दूकानें बढ़ा लेते हैं अथवा चबूतरे बनाकर उन पर अपना ही निस्तार करते हैं। ये कार्य भी अनुचित हैं। कहीं-कहीं लोग आवागमन के मार्ग में गाड़ियाँ खड़ी कर देते हैं अथवा अपने सामान या माल का ढेर लगाते हैं। कोई-कोई लोग तो अपने उत्सवों के कारण सड़कों पर पूरा अधिकार करके कुछ समय के लिए लोगों का आवागमन ही बंद कर देते हैं। यद्यपि ये सब अपराध कानून से दण्डनीय हैं, तथापि इनमें शिष्टाचार का भी उल्लंघन होता है।

सड़कों पर बहुधा ऐसी चीज़ें न फेंकनी चाहिये जो घृणित हों अथवा जिनसे दूसरों के स्वास्थ्य में विघ्न पड़ने का भय हो। घरों के निकट इस प्रकार के निस्तार भी न किये जावें जो स्वच्छता की दृष्टि से निषिद्ध हैं। सड़कों की ओर पाखानों के दरवाज़े न खोले जायँ और न उनमें सड़ी-गली चीज़ें जमा की जायँ। लोग बहुधा रोगियों के स्नान का पानी अथवा उसके शरीर से निकली हुई दूसरी चीज़ें सड़क पर इस विश्वास से

फेंक दिया करते हैं कि ऐसा करने से रोगी अच्छा हो जायगा और उसका रोग सड़क पर चलने-वालों को लग जायगा। ये टोटके नीचता से परिपूर्ण हैं। सड़कों पर पत्थर या काँटे न डाले जायँ और यदि किसी को ये चीज़ें वहाँ मिल जांय तो वह कृपा कर इन्हें सड़क से अलग कर देवे। जहाँ तक हो ऐसे धन्धे-वाले लोगों को जिनके धन्धों में दुर्गंध-पूर्ण वस्तुओं का उपयोग होता है अपना काम-काज बस्ती से दूर करना चाहिए।

किसी सार्वजनिक स्थान को हानि पहुँचाना अथवा अपवित्र करना अथवा उसमें जाकर असभ्य व्यवहार करना शिष्टता के विरुद्ध है। कुएँ, तालाब अथेवा नदी के जल को बिगाड़ना अथवा उनका उपयोग करने में किसी को रोकना कानून और शिष्टाचार दोनों के विरुद्ध है। जिन धर्म-शालाओं या सरायों में लोगों को ठहरने के लिए बिना भाड़े के स्थान मिलता है उन्हें अपने उपयोग के पश्चात् स्वच्छ करके अथवा कराके छोड़ना चाहिए। सार्वजनिक स्थानों में कोई नशा करना, अश्लील गीत गाना अथवा किसी धर्म की निन्दा करना असभ्यता है। पुस्तकालयों में पुस्तकों और मासिक-पत्रों को पढ़ने के पश्चात् यथा-स्थान रख देना चाहिये। उन्हें किसी प्रकार मोड़ना या फाड़ना न चाहिए।

खेल-तमाशों में स्थान छोड़कर बार-बार आना-जाना, हल्ला करना, किसी के दृष्टि-पथ को रोकना और व्यर्थ दंगा करना अनुचित है। जो स्थान स्त्रियों के लिए नियत हों उनमें पुरुषों को न जाना चाहिए और न उस मार्ग से निकलना चाहिए जहाँ से स्त्रियाँ आती-जाती हों। नाटक-वालों को ऐसे खेल न दिखाना चाहिए जिनसे दर्शकों की सुरुचि पर आघात पहुँचे या स्त्रियों की स्वाभाविक लज्जा पर बुरा प्रभाव पड़े। नाटकों में रङ्ग-मञ्च पर मृत्यु अथवा शृंगार-रस की पराकाष्ठा न दिखाई

देते ...वे और न करुणा-रस की अधिकता से दर्शकों के चित्त में अत्यन्त व्याकुलता उत्पन्न की जावे।

सड़कों पर या गलियों में अश्लील गीत गाते हुए निकलना असभ्यता है। जुलूस के अवसर को छोड़कर किसी दूसरे समय में अकेले व्यक्ति अथवा कुछ लोगों के समूह के लिए सड़क पर ... गलियों में गाते हुए चलना अनुचित है। फकीर अथवा ...ु लोग सड़कों और गलियों में गाते हुए निकलते हैं, पर उनके ... में ऐसा करना अशिष्ट नहीं समझा जाता। बस्ती के रास्तों में जोर-जोर से बातें करते हुए निकलना भी अनुचित है। प्रत्येक मनुष्य को सड़क पर अपने बायें हाथ की ओर चलना चाहिए जिससे सवारियों और दूसरे लोगों को आने-जाने में सुभीता हो। व्याख्याताओं को अथवा उत्सव मनाने-वालों का अपना काम सड़क के ऐसे भाग में न करना चाहिए जहाँ लोगों का आवागमन होता है।

ऐसे कार्यालयों में जहाँ कई लोगों का काम रहता है, लोगों को समय के क्रम से अपना काम कराना चाहिए। कार्यालय के कर्मचारी को भी उचित है कि वह पहले आये हुए व्यक्ति का कार्य पहले करे, चाहे वह किसी भी स्थिति का क्यों न हो। शिष्टाचार का पालन न करने से बहुधा अदालतों, डाकघरों और स्टेशनों में अपना-अपना काम शीघ्र निकालने की इच्छा के कारण पढ़े-लिखे लोगों में भी परस्पर धक्का-मुक्की हो जाती है। कभी-कभी बलवान और प्रतिष्ठित लोग दूसरों की आवश्यकता पर कुछ भी ध्यान न देकर अपना काम पहले कराने के लिए सब प्रकार के उचित और अनुचित उपाय करते हैं। हम लोगों में स्वार्थ-साधन की उत्सुकता और दूसरे के सुभीते की अवहेलना इतनी प्रबल है कि कभी-कभी बलवान या धनवान लोग रेल-गाड़ियों में आराम

से लेटे रहते हैं और निर्बल, बालक, वृद्ध और स्त्रियाँ उन के सामने घंटों खड़ी रहती हैं।

जिन मार्गों से मनुष्यों का आवागमन अधिकता से होता हो उनमें से पशुओं को निकालना अथवा गाड़ियों या घोड़ों को बड़े वेग से दौड़ाना उचित नहीं। सड़क के किनारे रहने-वालों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे अपने छोटे-छोटे बच्चों को सड़क पर खेलने या फिरने न देवें, क्योंकि ऐसा करने से दुर्घटनाओं की सम्भावना रहती है। कई एक गाड़ी वाले इतने मूर्ख होते हैं कि वे परिणाम का कुछ भी ध्यान न रख अपनी गाड़ी को दूसरे की गाड़ी से आगे निकालने के लिए उसे किसी भी तरफ बड़े जोर से चलाते हैं। ये लोग बहुधा अशिक्षित होने के कारण पैदल लोगों को एक तरफ हटाने के लिये सूचना देने में सभ्यता-पूर्वक बोलना ही नहीं जानते।

(१४) बाल-शिष्टाचार

लड़कों में बहुधा आपसी झगड़े हो जाते हैं, जिनका एक मुख्य कारण उन लोगों में शिष्टाचार की शिक्षा का साधारण अभाव है। यद्यपि पाठशालाओं में शिष्टाचार की थोड़ी-बहुत शिक्षा प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से दी जाती है, तथापि विद्यार्थी अपनी अवस्था के प्रभाव में पड़कर बहुधा व्यवहार में उस शिक्षा को भूल जाते हैं। कई विद्वानों का ऐसा मत है कि लड़कों को शिष्टाचार की शिक्षा देना मानो उन्हें बन्धन में डालना है; पर अनुभव से बात की आवश्यकता जानी जाती है कि लड़कों को शिष्टाचार की मोटी-मोटी बातें बताई जावें और उनके अनुसार उनसे कार्य कराया जावे।

लड़कों के बहुत से आपसी झगड़े व्यक्ति-गत मिथ्या अभिमान से उत्पन्न होते हैं। कोई लड़का अपने को औरों से

दते धिक बालवान समझकर उनका अनादर करता है; कोई ढ़ने-लिखने में कुछ अधिक चञ्चल होने के कारण दूसरों को र्ख समझता है और कोई सीधे स्वभाव-वाला विद्यार्थी उपद्रवी ड़कों से मन ही मन घृणा करता है। इन अवस्थाओं में बहुधा अनबन हो जाती है और लड़के एक दूसरे को नीचा दिखाने का यत्न करते हैं। कोई-कोई लड़के अपने पिता के धन या उच्च के अभिमान में दूसरे लड़कों के सामने दून की हाँकते हैं र यदि कोई लड़का उनकी बात का खंडन कर देता है तो उससे बदला लेने की घात में रहते हैं। किसी-किसी विद्यार्थी का स्वभाव ही ऐसा दूषित होता है कि वह अपने मिथ्या महत्व के आगे किसी भी लड़के का महत्व सहन ही नहीं कर सकता। कई-एकों में अपनी पोशाक ही का ऐसा अभिमान होता है कि वे दूसरे लड़कों से सीधे बात ही नहीं करते और नम्र से नम्र प्रश्न का उत्तर बड़ी ऐंठ के साथ देते हैं। यहाँ कदाचित् यह बताने की आवश्यकता नही है कि इन दुर्गुणों से केवल लड़कों की ही नहीं, किन्तु उनके माता-पिता की भी बड़ी निन्दा होती है।

लड़कों की अनबन का एक प्रमुख कारण एक दूसरे को चिढ़ाना अथवा आपस में अनुचित हँसी-ठट्ठा करना है; इसलिये प्रत्येक समझदार विद्यार्थी का यह कर्त्तव्य है कि वह दूसरे से व्यर्थ हँसी-ठट्ठा न करे। दूसरे को चिढ़ाने या उसकी हँसी उड़ाने में जो मिथ्या आनन्द प्राप्त होता है उसकी प्रेरणा से लड़के तो क्या, बड़ी उमर-वाले भी कभी-कभी नहीं बच सकते। ऐसी अवस्था में यह बात बहुत आवश्यक है कि लड़कों की यह दूषित प्रवृत्ति यथा-सम्भव कम की जावे। यदि लड़के स्वयं इस बात को सोचें कि जिसको वे चिढ़ाते हैं उसके मन में कितना खेद होता होगा तो वे स्वयं दूसरे के

मन को व्यर्थ दुखाने से अवश्य पीछे हटेंगे। तुलसीदास ने कहा है कि—

" परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥"

जो लड़का दूसरे को न चिढ़ावेगा उसे सम्भवतः दूसरे लड़के कभी न चिढ़ावेंगे। लड़कों को चाहिये कि वे मिलकर ऐसे व्यक्ति के दोषों को रोकें जो दूसरों के साथ व्यर्थ हँसी-ठट्ठा करता है या उनको अश्लीलता सिखाता है।

लड़कों के मिथ्याभिमान से भी बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं। लड़के बहुधा अपनी बड़ाई और दूसरे की निन्दा करने में बड़ा आनंद मानते हैं। गरीब-लड़के तो इन मिथ्याभिमानी लड़कों की दृष्टि में किसी प्रकार योग्य ही नहीं ठहरते। विद्या-सम्बन्धी मिथ्याभिमान के वशीभूत होकर लड़के बहुधा व्यर्थ वाद-विवाद में प्रवृत्त हो जाते हैं और एक दूसरे की बात हठ-पूर्वक काटने लगते हैं। कभी-कभी ये लोग ऐसी सम्मतियाँ प्रकट करते हैं जो केवल बड़ी उमर-वाले अथवा अनुभवी लोग ही प्रकट कर सकते हैं। इतना ही नहीं, ये लोग कभी-कभी अपने से अधिक ज्ञान-वाले तरुण पुरुषों से भी बहस और हुज्जत करने लगते हैं। इन दोषों से बचने के लिए विद्यार्थियों को चाहिये कि वे ऐसी बातों में बहुत सोच-समझकर भाग लेवें।

कई-एक उद्दंड लड़के दूसरे लड़कों को व्यर्थ ही दबाते हैं और कभी-कभी उनसे कुछ खीच भी लेते हैं। दूसरे लड़कों को चाहिये कि ऐसे दुष्ट लड़कों के साथ कभी घनिष्ठता न बढ़ावें और केवल ऊपरी मेल-जोल रक्खें। कोई-कोई लड़के तो यहाँ तक नीच होते हैं कि आप तो पढ़ने में मन लगाते नहीं और ईर्षा-वश दूसरे लड़कों का मन पढ़ने से हटाने का उपाय करते

कोई-कोई बड़े आदमियों के मंद-बुद्धि लड़के गरीब आदमियों के तीव्र-बुद्धि लड़कों से मन ही मन ईर्षा रखते हैं और उनके कामों में विघ्न डालते हैं।

लड़के बहुधा छोटी-छोटी बातों में एक दूसरे से अप्रसन्न हो जाते हैं और अपनी इच्छा की अपूर्त्ति को मान-भंग समझकर आपस में लड़ बैठते हैं। इसलिये उन्हें उचित है कि वे किसी से अप्रसन्न होने के पहले कम से कम एक बार इतना अवश्य सोच लिया करें कि उनका ऐसा करना उचित है या नहीं। लड़कों में स्वार्थ की इतनी अधिक मात्रा रहती है कि वे प्रायः प्रत्येक बात में अपनी ही टेक चलाते हैं और दूसरे के हानि-लाभ अथवा सुख-दुःख का बहुत कम विचार करते हैं। यदि कोई उनसे उन्हीं के लाभ की बात कहे तो उसमें भी वे विश्वास नहीं करते। यही कारण है कि कुसङ्ग में पड़े हुए लड़के कठिनाई से सुधरते हैं। लड़कों की बुद्धि कच्ची होने के कारण वे बहुत दूर तक विचार नहीं कर सकते जिसके कारण वे बहुधा धूर्त लोगों के फुसलावे में आजाते हैं। यदि लड़के शिष्टाचार की बातें स्वयं नहीं समझ सकते तो उनके माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे सन्तान को सभ्य आचरण की शिक्षा देवें।

—: * :—

सातवाँ अध्याय

(१) विदेशी-भाषा

लोगों के मन पर विदेशी-भाषा का बड़ा प्रभाव पड़ता है जो कभी लाभदायक और कभी हानिकारक होता है। जब विदेशी भाषा के प्रभाव में पड़कर लोग उसे ज्ञान की प्राप्ति और सत्य की खोज के लिए पढ़ते हैं तब वह प्रभाव लाभकारी होता है; परन्तु जब विदेशी-भाषा पंडिताई बघारने अथवा मातृ-भाषा की अवहेलना के निमित्त पढ़ी जाती है, तब उसका प्रभाव हानिकारक होता है। विदेशी-भाषा का प्रभाव अथवा अनुराग लोगों में स्वभाव ही से इतना प्रबल होता है कि जो लोग उस भाषा के दो-चार ही शब्द सीख लेते हैं वे उनका जहाँ-तहाँ उपयोग किया करते हैं।

विदेशी-भाषा जानने-वाला मनुष्य बहुधा भावुकता के कारण श्रोताओं की दृष्टि में असाधारण विद्वान् समझा जाता है। इसी कारण लोग उस भाषा का टूटा फूटा ज्ञान प्राप्त करके भी प्रशंसा के पात्र बनने की इच्छा करते हैं। हमीं लोगों में जो मनुष्य संस्कृत, पाली अथवा प्राकृत का ज्ञान रखता है वह केवल हिन्दी जानने वालों की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठा का पात्र समझा जाता है, चाहे उसे अपनी मातृ-भाषा का अधूरा ही ज्ञान हो। इसी प्रकार फारसी अथवा अरबी जानने-वाले लोग भी असाधारण आदर के योग्य माने जाते हैं। जो लोग केवल इसी प्रशंसा-प्राप्ति के उद्देश्य से विदेशी-भाषाएँ सीखते हैं उनके सम्बन्ध से भी समझना चाहिये कि उन पर विदेशी भाषा का हानि-कारक प्रभाव पड़ा है। आजकल अँगरेज़ी के ज्ञान का वह मान नहीं है

देते तीस वर्ष पूर्व था; तथापि अब भी लोग अँगरेज़ी के ज्ञान को केवल जीविका का ही नहीं, किन्तु प्रतिष्ठा का भी साधन मानते हैं।

विदेशी-भाषा का ज्ञान अनावश्यक नहीं है, आज-कल लोगों को पृथ्वी के कई भागों में व्यापार के लिए आना-जाना पड़ता है। ऐसी अवस्था में किसी एक या अनेक विदेशी-भाषाओं के ज्ञान के विना काम नहीं चल सकता। अनेक प्रकार की विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी उन्नत विदेशी-भाषाओं का सीखना आवश्यक है। इसके सिवा राज-काज का अनुभव प्राप्त करने के लिए भी विदेशी-भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है; अतएव कोई भी आवश्यक विदेशी-भाषा सीखना प्रत्येक विद्वान् और व्यवसायी का कर्त्तव्य है। शब्द शास्त्रियों के लिए तो अनेक भाषा का ज्ञान अनिवार्य है।

जहाँ अपनी मातृ-भाषा बोलने से काम चल सकता है वहाँ विदेशी भाषा बोलना अशिष्टता है। सम्भाषण में अनावश्यक विदेशी शब्दों को बीच-बीच में बोलना भी एक प्रकार की अशिष्टता है। कई-एक हिन्दुस्थानी अफसर अपने सहायक कर्मचारियों के साथ अँगरेज़ी में अनावश्यक बातचीत करना अपना गौरव समझते हैं; पर यह उनकी भूल है। कभी-कभी तो ऐसा विचित्र दृश्य देखा जाता है कि एक मनुष्य हिन्दी में बात करता है और दूसरा उसको अँगरेज़ी में उत्तर देता है। कई-एक अँगरेज़ी पढ़े उच्च कर्मचारी थोड़ी अँगरेज़ी जानने-वाले अपने हिन्दुस्थानी भाई के साथ अँगरेज़ी में बात करके उस अल्पज्ञ सज्जन को व्यर्थ ही संकोच में डालते हैं जिससे उसे विवश होकर टूटी-फूटी विदेशी भाषा बोलनी पड़ती है। जो मनुष्य किसी विदेशी-भाषा को शीघ्रता पूर्वक न बोल सकता हो, वह उस

भाषा के पूर्ण-ज्ञाताओं से उस भाषा में बातचीत करने के व्यर्थ साहस न करे ?

कई लोग अपने कुटुम्बियों तक को अँगरेज़ी में चिट्ठी लिखते हैं, पर यह कार्य बहुत ही अनुचित है। विदेशी लोग अपनी भाषा का उपयोग न करने-वाले लोगों को अनादर की दृष्टि से देखते हैं और स्वयं लेखकों के जाति-वाले लोग भी उन्हें प्रतिष्ठित नहीं मानते। यथार्थ में अपनी मातृ-भाषा का उपयोग न करना मनुष्य की राष्ट्रीयता का घातक है। जब किसी जाति में दासता की प्रवृत्ति बढ़ जाती है तब उसे अपना भेष और भोजन के साथ साथ भाषा की ओर भी उदासीनता हो जाती है। कुछ समय पूर्व हिन्दुस्थानी लोग हिन्दी के बदले अँगरेज़ी में भाषण दिया करते थे, पर अब समय के फेर से उन लोगों का ध्यान अपनी मातृ-भाषा की ओर इतना आकृष्ट हुआ है कि आजकल अँगरेज़ी के व्याख्यान बहुत कम सुनने में आते हैं। हिन्दी और हिन्दुस्थानी के लिए ये शुभ चिह्न हैं।

विदेशी भाषा के उच्चारण की सूक्ष्म शुद्धता पर उस समय ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है जब वे शब्द हमारी मातृ-भाषा में मिल गये हों। प्रचलित विदेशी शब्दों के बदले में अप्रचलित देशी शब्द रखने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु यदि आवश्यकता के बिना और लोगों की असावधानी के कारण मातृ-भाषा में विदेशी शब्दों का प्रचार बढ़ने लगे तो प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह विदेशी शब्दों की बाढ़ को रोके। जो विदेशी उच्चारण किसी देशी भाषा में न हो उसके लिए हमें अपनी भाषा के मिलते जुलते उच्चारण का उपयोग करना चाहिये। विदेशी भाषा का अत्यन्त शुद्ध उच्चारण करना केवल मातृ-भाषा-भाषी लोगों की दृष्टि में पाण्डित्य का प्रदर्शन समझा जाता है। विदेशी भाषा के मुहावरों और कहावतों का

देते बाद करके उसे अपनी मातृ-भाषा के अंग के समान उपयोग लाना उपहास का विषय है। कभी-कभी लोग विनोद में शी मुहावरों और कहावतों के अनुवाद का उपयोग कर देते परन्तु व्याख्यानों अथवा लेखों में यह उपयोग निन्दनीय है।

(२) विदेशी-धर्म

अधिकांश लोगों की यह प्रवृत्ति होती है कि उन्हें पुरानी से घृणा और नई बातों से अनुराग होने लगता है। इसी के वशी-भूत होकर कई लोग कभी-कभी अपने धर्म को दो-चार कुरीतियों के कारण दूषित और दूसरों के धर्म को कुछ नवीनताओं के कारण निर्दोष समझने लगते हैं और अंत में दूसरे साधक-बाधक कारणों के आ जाने से अपने धर्म को त्याग देते हैं। यद्यपि कोई किसी को कोई विशेष धर्म मानने के लिए बाध्य नहीं कर सकता, तथापि शिष्टाचार की दृष्टि से और नीति का दृष्टि से भी, मनुष्य को अपने कुल और समाज का धर्म मानना चाहिये। श्रद्धा के सिवा, धर्म-परिवर्तन के ऐसे अनेक कारण हैं जो सभ्यता की दृष्टि से निन्दनीय समझे जाते हैं। उदाहरण के लिए जो मनुष्य धन की आशा से अपना धर्म छोड़कर दूसरे के धर्म में जाता है वह दोनों ओर से पतित समझा जाता है। साथ ही किसी उत्तरदायी और प्रतिष्ठित व्यक्ति के धर्म-परिवर्तन के उदाहरण से समाज के दूसरे लोगों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है; इसलिये जब तक आत्म-प्रवृत्ति का पूरा आकर्षण न हो और तत्वज्ञान का उच्चतम लाभ प्राप्त न हो तब तक किसी को अपना धर्म न त्यागना चाहिये।

कई लोग अपने धर्म की बड़ाई और दूसरे के धर्म की निन्दा किया करते हैं। ये दोनों बातें शिष्टाचार के विरुद्ध हैं। अनेक धर्मान्ध और संकीर्ण हृदय-वाले लोग तो यहाँ तक समझते हैं

कि केवल उन्हीं का धर्म संसार में श्रेष्ठ है और दूसरे के
में कोई सार ही नहीं। उनकी समझ में जो लोग पूर्व को
करके ईश्वर की प्रार्थना करते हैं वे पापी और अशिक्षित
ऐसे मूर्ख तो यहाँ तक समझते हैं कि उनका ईश्वर और
और दूसरों का और। असभ्य लोग तो एक दूसरे के ईश
को गालियां तक सुना देते हैं! ये मूर्ख केवल अपनी ही
किन्तु अपने धर्म की भी निन्दा कराते हैं। ईश्वर का
और उसकी भक्ति ऐसे विषय नहीं है, जो किसी एक जा
ठेके में आये हों। ऐसी अवस्था में मनुष्यों को एक दूसरे के धर्म
की ओर अनादर भाव कभी न प्रकट करना चाहिये।

यद्यपि धर्म के अनेक नियम और सिद्धान्त शास्त्रार्थ तथा
वाद-विवाद से सरलता-पूर्वक जांचे जा सकते हैं और विद्वानों
को इस प्रकार की जांच अवश्य करना चाहिये, तथापि बिना
प्रयोजन के धर्म सम्बन्धी विषयों में वाद-विवाद उपस्थित करना
अनुचित है। हम लोग वाद-विवाद करके किसी से भी ऐसा
धर्म स्वीकार नहीं करा सकते जिसमें उसकी श्रद्धा न हो और
जिसमें केवल बल का प्रयोग किया जावे। यदि कोई मनुष्य
किसी से बल-पूर्वक कोई धर्म स्वीकार करावेगा तो अवसर
आने पर अथवा अधिक ज्ञान प्राप्त होने पर वह ऐसे निर्दयी धर्म
को छोड़ देगा।

कोई-कोई विद्वान् लोग यथार्थ में नास्तिक हो जाते हैं अथवा
अपने को नास्तिक कहने में अपना गौरव मानते हैं। इन नास्तिकों
की देखा-देखी बहुधा नव-युवक लोग भी जिनको संसार का
अथवा किसी एक धर्म का बहुत कम अनुभव रहता है अपने
को नास्तिक कहने लगते हैं और ईश्वर के विषय में बहुधा
पुरानी और थोथी युक्तियाँ उपस्थित करते हैं। ऐसे लोगों को

देते ना चाहिये कि ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करना अथवा डत करना बड़ी विद्वत्ता का काम है; इसलिये उन्हें ऐसी ल बातें करना उचित नहीं। उन लोगों को सदैव इस को स्मरण रखना चाहिये कि जिस धर्म में ईश्वर की पूजा लिए स्थान नहीं है वह धर्म मिथ्या है।

॥ इति ॥